* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

ब्रह्माजीका मोह

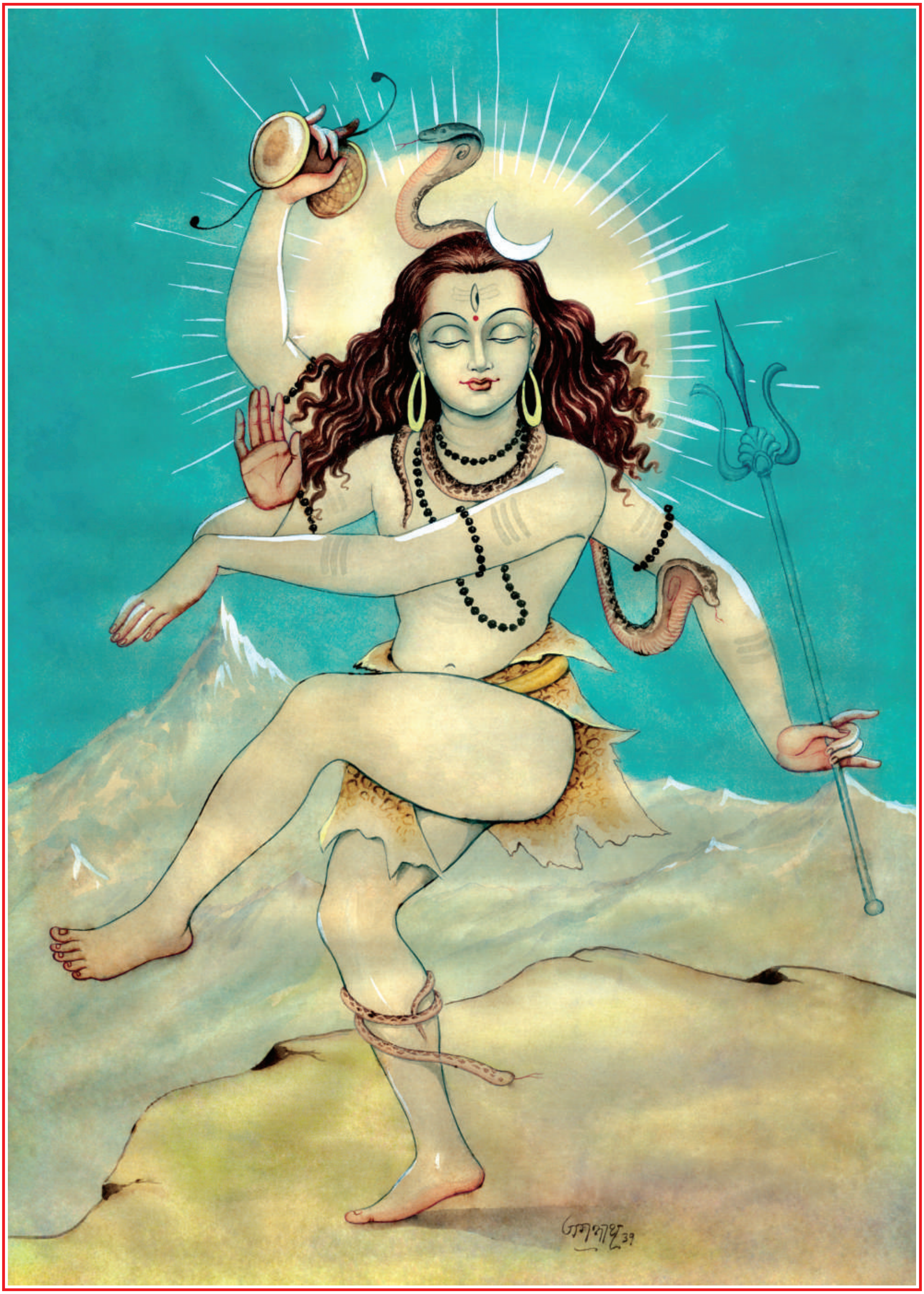

शिवताण्डव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

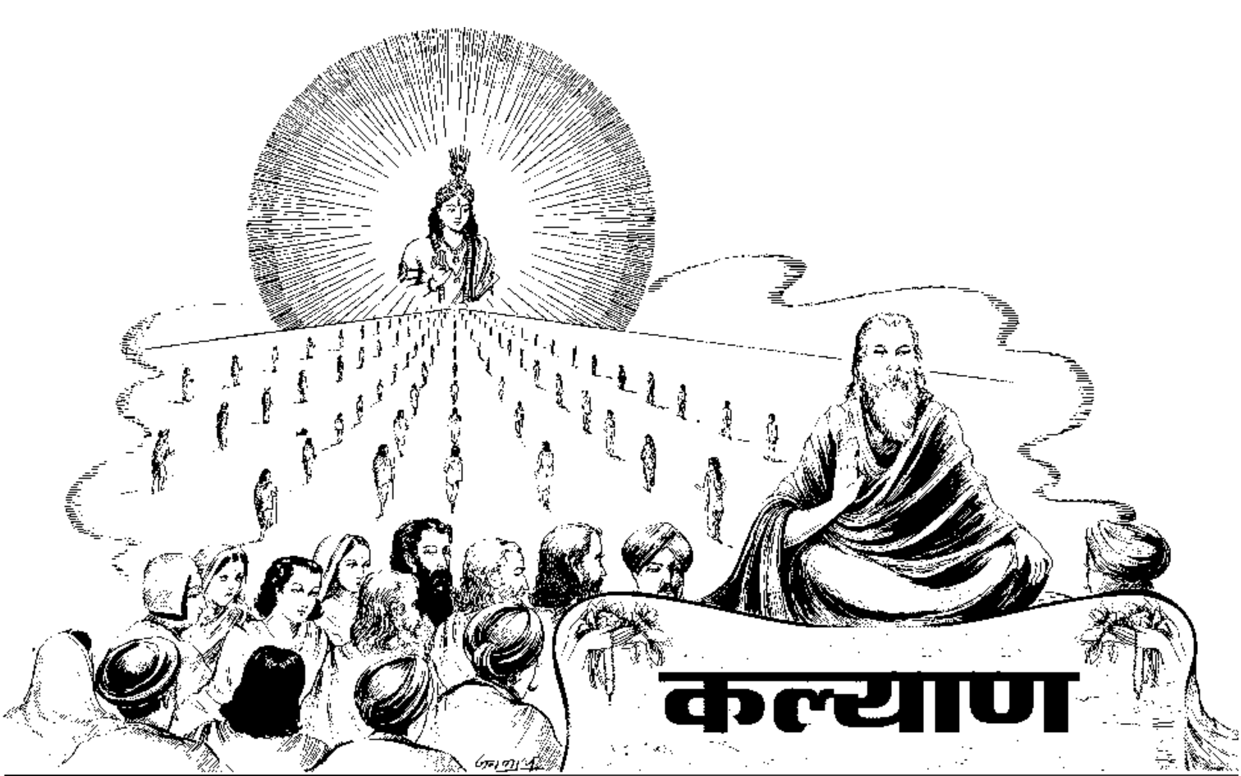

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, अगस्त २०२३ ई० | संख्या ८

पूर्ण संख्या ११६१

शिवताण्डव

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥

[शिवताण्डवस्तोत्र १]

जिन्होंने जटारूपी अटवी (वन)-से निकलती हुई गंगाजीके गिरते हुए प्रवाहोंसे पवित्र किये गये गलेमें सर्पोंकी लटकती हुई विशाल मालाको धारणकर, डमरूके डम-डम शब्दोंसे मण्डित प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) किया, वे शिवजी हमारे कल्याणका विस्तार करें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, अगस्त २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ८

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- शिवताण्डव	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- ब्रह्माजीका मोह [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- सत्य (महात्मा गाँधी)	८
६- श्रीवाल्मीकीय रामायण सच्चा इतिहास है (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९
७- भिक्षाका उपयोग [**बोधकथा**]	१०
८- भीख (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
९- दोष-दर्शनका त्याग (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१२
१०- गरीबके दानकी महिमा [**बोधकथा**]	१३
११- सन्त-संगकी महिमा [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१४
१२- भवसागरकी नाव (वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)	१५
१३- मूल्य उपयोगिताका होता है [**बोधकथा**]	१६
१४- कृष्णावतार ही पूर्णावतार है (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	१७
१५- परमेश्वर हमारे अन्दर है [**बोधकथा**]	२०
१६- कायाकल्प एवं मन:कल्पका आधार (डॉ० श्रीओमप्रकाशजी आनन्द)	२१
१७- जीवनमें सफलताकी कुंजी (प्रो० श्रीहंसराजजी अग्रवाल, एम० ए०, पी० ई० एस०)	२२
१८- संयम ही स्वास्थ्यकी कुंजी है [**बोधकथा**]	२३
१९- सखा-सत्कार [**श्रीकृष्णलीला-दर्शन**]	२४
२०- अमृतोज्ज्वला गंगा [**कविता**] (प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)	२५
२१- महाकाललोकके पौराणिक महत्त्वका पुनर्जागरण [**तीर्थ-दर्शन**] (प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)	२६
२२- महाकालस्तुतिः	२७
२३- गुमनाम साधु-सन्तोंकी भक्तिमय रचनाएँ (श्रीउमेशप्रसाद सिंहजी)	२८
२४- वृद्धावस्था—अभिशाप नहीं, अपितु वरदान है (श्रीराधेश्यामजी चाण्डक)	२९
२५- भक्त बालीग्रामदास [**सन्त-चरित**]	३१
२६- 'दीनबन्धु, वाही दिना, देह देत, सब देत' (श्रीसत्यदर्शनजी मिश्र)	३४
२७- गोपालका गोचारण [**गो-चिन्तन**] (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	३६
२८- धार्मिक व्रतोंसे आरोग्यकी प्राप्ति [**आरोग्य-चर्चा**] (डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्हेरे)	३७
२९- श्रीरामचरितमानसमें श्रीकृष्ण-कथाकी प्रवाहित पावनधारा (श्रीइंदल सिंहजी भदौरिया)	३९
३०- सुभाषित-त्रिवेणी	४१
३१- व्रतोत्सव-पर्व [**आश्विनमासके व्रत-पर्व**]	४२
३२- कृपानुभूति	४३
३३- पढ़ो, समझो और करो	४५
३४- मनन करने योग्य	४८
३५- माननीय प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदीजीका सम्बोधन [गीताप्रेस-शताब्दीवर्ष-समारोहका समापन-भाषण]	४९

चित्र-सूची

१- ब्रह्माजीका मोह	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- शिवताण्डव	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- ब्रह्माजीका मोह	(इकरंगा)	७

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।

'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

एक पुरानी कहावत है—'*पहला सुख निरोगी काया*'। यह भगवत्कृपासे प्राप्त हमारा मानव-शरीर स्वस्थ रहे, तभी किसी पुरुषार्थकी सिद्धि हो सकती है। अन्यथा तो दूसरोंपर प्रायः परिवारजनोंपर, बोझ बनकर ही जीवन बिताना पड़ता है।

हमारा शरीर जिन पाँच तत्त्वोंसे बना है, वे हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। ये पाँचों प्रभुकृपासे हमें सदा सुलभ हैं और इनके यथोचित उपयोग करनेमें कोई बड़ी बाधा भी नहीं है। यदि हम अपनी काल्पनिक आधुनिक जीवन-पद्धतिमें स्वयं ही इनका असन्तुलित उपभोग या बहिष्कार न कर दें।

शास्त्रोंमें एक वचन आया है—'आरोग्यम् भास्करात् इच्छेत्**' अर्थात् हमें अपने स्वास्थ्यकी कामना सूर्यनारायणसे करनी चाहिये। अधिकांश आस्तिक परिवारोंमें प्रातःकाल सूर्यभगवान्‌को जल चढ़ाकर प्रणाम करनेकी परम्परा रही है। आधुनिकताकी चपेटमें कहीं-कहीं शिथिलता भी हो जाती है। सूर्यभगवान्‌को जल चढ़ाकर प्रणाम करनेमात्रसे निरोगी कायाका प्रमाण अनेक आस्तिक जन देते हैं। इस सुलभ निरापद प्रयोगको करनेमें कल्याण-ही-कल्याण है।**

—सम्पादक

हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—मान-बड़ाई मीठा विष है। इनकी जब प्राप्ति होती है, तब ये बड़े ही मधुर लगते हैं; परंतु ये साधकको सहज ही मार्गभ्रष्ट कर देते हैं। मान-बड़ाईकी आसक्ति मनुष्यको दम्भ, छल, ईर्ष्या, द्वेष, वैर आदि अनेक नये-नये दोषोंका शिकार बना देती है।

याद रखो—मान-बड़ाई चाहनेवाला मनुष्य दूसरे लोगोंके मनोरंजनमें ही लगा रहता है; क्योंकि मान-बड़ाई दूसरोंसे ही प्राप्त होती है। यदि लोग भजन करनेवालेकी मान-बड़ाई करते हैं, तो वह भजनका दम्भ करने लगता है। यदि दुराचार या पापसे मान-बड़ाई मिलनेकी सम्भावना होती है, तो वह दुराचार तथा पाप करनेमें नहीं सकुचाता। इसलिये मान-बड़ाईसे सदा डरते रहो ।

याद रखो—संसारमें चार प्रकारके मनुष्य हैं—१-सिद्ध पुरुष, जो मान-बड़ाई तथा अपमान-निन्दामें सम होते हैं। २-उच्च श्रेणीके साधक पुरुष, जो मान-बड़ाईमें दुखी और अपमान-निन्दामें सुखी होते हैं। मान-बड़ाई करनेवालेको अहितैषी और अपमान-निन्दा करनेवालेको हितैषी मानते हैं। ३-विषयी, जो मान-बड़ाई चाहते हैं और उन्हें जीवनका बहुत बड़ा लाभ मानते हैं और ४-पामर, जो मान-बड़ाईकी परवा न करके नित्य अपमान तथा निन्दा सहते हुए भी दुष्कर्मोंमें लगे रहते हैं।

याद रखो—सिद्ध पुरुष केवल मानापमान और स्तुति-निन्दाको समान ही नहीं समझते; उनके लिये वह कोई वस्तु ही नहीं होती। अतएव अपमान-निन्दा करनेवालेके प्रति भी वे वैसा ही प्रेम करते हैं, जैसा मान-स्तुति करनेवालेके प्रति; वे अपमान-निन्दा करनेवालेकी भी दु:खमें ठीक उसी भाव और उसी परिमाणमें सहायता करते हैं, जैसी मान और स्तुति करनेवालेकी; वे अपमान-निन्दा करनेवालेके दोषोंपर भी उसी प्रकार ध्यान नहीं देते, जैसे मान-स्तुति करनेवालेके दोषोंपर नहीं देते और वे अपमान-निन्दा करनेवालेका भी वैसे ही हित चाहते हैं, जैसे मान-स्तुति करनेवालेका।

याद रखो—श्रेष्ठ साधक पुरुष अपमान-निन्दामें सुखी होते हैं, इससे अपमान-निन्दाकी प्राप्तिके लिये कोई पाप-कर्म करते हों सो बात नहीं है; वे बुरा कर्म तो जान-बूझकर कभी करते नहीं; अच्छा कर्म करनेपर भी कोई उनकी निन्दा या अपमान करता है, तो वे उसको अपना हितैषी मानते हैं। वे मानते हैं कि इन निन्दा-अपमान करनेवाले लोगोंकी दृष्टि बहुत ही सूक्ष्म है, जिससे इन्हें हमारे छिपे हुए सूक्ष्म दोष भी स्पष्ट दीख पड़ते हैं और ये हमको सर्वथा निर्दोष बनाना चाहते हैं, इसलिये हमारी निन्दा या अपमान करके हमारा हित करते हैं। इस प्रकार वे उनमें गुण देखकर उनका आदर करते हैं और स्तुति तथा मान करनेवालोंको अपना भोला बन्धु मानते हैं, जो प्रीति तो करते हैं परंतु प्रीतिवश दोषोंको न देख सकनेके कारण दोषोंका बखान नहीं करते और उलटे स्तुति-मान करके दोषोंको बढ़ा देते हैं।

याद रखो—कभी कोई तुम्हारी मान-बड़ाई करे तो यह मत समझो कि तुममें ये गुण हैं और तुम इन गुणोंके कारण इन लोगोंसे बड़े हो। यों यदि दूसरोंके द्वारा की हुई महिमाको सचमुच अपनेमें मान लोगे तो अभिमान बढ़ जायगा, मान प्रिय लगने लगेगा, बड़ाईकी चाह बढ़ जायगी और तुम गिर जाओगे। दूसरे मान-बड़ाई करें तो यह समझो कि 'या तो ये बहुत श्रेष्ठ पुरुष हैं, जिनकी दिव्य दृष्टिके सामने दोष न आकर गुण ही आते हैं या इनमें इतना अनुराग है कि इन्हें दोष भी गुण दीखते हैं, अथवा ये ऐसे सज्जन हैं कि गुण ही बखानते हैं, दोष बखानकर अपनी जबानको गन्दी नहीं करते।' यों समझनेपर तुम्हें तीनों ही प्रकारसे उन्हींके गुण दिखायी देंगे, तुम्हें अपनेमें गुण नहीं दीखेंगे। तुम मान-बड़ाईके मीठे विषसे बचे रहोगे।

याद रखो—दूसरोंको तुम जब इस प्रकार गुण-दृष्टिवाले समझोगे, तब उनके इस गुणका तुमपर भी प्रभाव पड़ेगा और फिर तुम भी अपनेमें दोष तथा दूसरोंमें गुण देखने लगोगे। जब तुम्हें सचमुच अपनेमें दोष दीखेंगे और दूसरोंमें गुण, तब अपने-आप ही मान-बड़ाईकी महिमा सुननेकी इच्छा मिट जायगी एवं तुम अपने छिपे हुए एक-एक दोषको देखकर उसे निकालनेमें लग जाओगे। तुम्हारे अन्दर नम्रता तथा विनय प्रकट होगी—और तुम अमानी होकर दूसरोंको मान देते हुए भगवान्के प्रिय बन जाओगे। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

ब्रह्माजीका मोह

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ भोजन कर रहे थे। उनके बछड़े हरी-हरी घासके लालचमें घने जंगलमें दूर चले गये। जब ग्वालबालोंका ध्यान बछड़ोंकी तरफ गया, तब वे भयभीत हो गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मित्रो! चिन्ता न करो। तुमलोग भोजन करो। मैं अभी तुम्हारे बछड़ोंको ढूँढ़कर ला देता हूँ।'

श्रीकृष्ण ग्वालबालोंसे इस प्रकार कहकर बछड़ोंको ढूँढ़ने चल दिये। उस समय ब्रह्माजी भी वहाँ उपस्थित थे। भगवान्‌को ग्वालबालोंके साथ विचित्र लीला करते हुए देखकर उनके मनमें मोह हो गया। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी परीक्षा लेनेके लिये बछड़ोंको चुरा लिया और जब भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ोंको ढूँढ़ने चले गये तो ब्रह्माजीने ग्वालबालोंको चुराकर किसी गुफामें छिपा दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण बछड़े न मिलनेपर यमुनाजीके तटपर लौट आये, परंतु वहाँ देखते हैं कि ग्वालबाल भी नहीं हैं। वे तुरन्त जान गये कि यह सब ब्रह्माजीकी करतूत है। अब भगवान् श्रीकृष्णने अपने-आपको ही ग्वालबालों तथा बछड़ोंके रूपमें बना लिया। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने ग्वालबालों तथा बछड़ोंके रूपमें नन्द आदिकी गोशालाओंमें प्रवेश किया तो कोई भी उन्हें पहचान न सका। गायें भी श्रीकृष्णरूप अपने-अपने बछड़ोंको दूने स्नेहसे चाटने और दूध पिलाने लगीं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ग्वालबालों तथा बछड़ोंके रूपमें वन जाते और सन्ध्याके समय लौट आते। इस तरह पूरे एक वर्षका समय बीत गया।

जब ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे लौटे, तो उन्होंने श्रीकृष्णको ग्वालबालों और बछड़ोंके साथ पहलेकी भाँति क्रीड़ा करते हुए देखा। वे सोचने लगे कि ग्वालबालों और बछड़ोंको तो मैंने चुराकर अपनी मायासे अचेत करके गुफामें बन्द कर दिया था, वे अबतक वहाँ सो रहे हैं, फिर उतने ही दूसरे बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये!

ब्रह्माजी अपनी मायासे भगवान् श्रीकृष्णको मोहित करने चले थे, परन्तु स्वयं मोहित हो गये। उनके देखते-ही-देखते सभी ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़ने लगे। यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी चकित रह गये। वे भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे निस्तेज होकर मौन रह गये। यद्यपि ब्रह्माजी समस्त विद्याओंके केन्द्र हैं, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णको समझनेमें असमर्थ हो गये। उनकी आँखें मुँद गयीं।

भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीकी असमर्थताको देखकर अपनी मायाका परदा हटा लिया, तब जाकर ब्रह्माजीको बाह्यज्ञान हुआ। ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण जैसे पहले ग्वालबालों और बछड़ोंको ढूँढ़ रहे थे, वैसे आज भी ढूँढ़ रहे हैं। वे अपने हंसपरसे कूद पड़े और भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें दण्डकी तरह गिर पड़े। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा गिरकर भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको भिगोने लगी। फिर बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर उन्होंने अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी तथा ग्वालबालों और बछड़ोंको लौटा दिया। अन्तमें वे श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए ब्रह्मलोक चले गये।

सत्य

(महात्मा गाँधी)

'सत्य' शब्दका मूल सत् है। सत्के मानी हैं होना, सत्य अर्थात् होनेका भाव। सिवा सत्यके और किसी चीजकी हस्ती ही नहीं है। इसीलिये परमेश्वरका सच्चा नाम सत् अर्थात् सत्य है। चुनांचे, परमेश्वर सत्य है, कहनेके बदले सत्य ही परमेश्वर है, यह कहना ज्यादा मौजूँ है। राज चलानेवालेके बिना, सरदारके बिना, हमारा काम नहीं चलता, इसीसे परमेश्वर-नाम ज्यादा प्रचलित है और रहेगा। पर विचार करनेसे तो सत्य ही सच्चा नाम मालूम होता है और यही पूर्ण अर्थका सूचक भी है।

जहाँ सत्य है वहाँ ज्ञान—शुद्ध ज्ञान है ही। जहाँ सत्य नहीं वहाँ शुद्ध ज्ञान हो नहीं सकता, इसीलिये ईश्वर-नामके साथ चित्-ज्ञान शब्द जोड़ा गया है। जहाँ सत्य ज्ञान है वहाँ आनन्द ही हो सकता है, शोक हो ही नहीं सकता और चूँकि सत्य शाश्वत है, इसलिये आनन्द भी शाश्वत होता है। इसी कारण हम ईश्वरको सच्चिदानन्दके नामसे भी पहचानते हैं।

इस सत्यकी आराधनाके लिये ही हमारी हस्ती हो और इसीके लिये हमारी हर एक प्रवृत्ति हो। इसीके लिये हम हर बार श्वासोच्छ्वास लें। ऐसा करना सीख जानेपर हमें बाकी नियम सहज ही हाथ लगेंगे और उनका पालन भी आसान हो जायगा। बगैर सत्यके किसी भी नियमका शुद्ध पालन अशक्य है।

आमतौरपर सत्यके मानी हम सच बोलना ही समझते हैं। लेकिन हमने तो सत्य शब्दका विशाल अर्थमें प्रयोग किया है। विचारमें, वाणीमें और आचारमें सत्य-ही-सत्य हो। इस सत्यको सम्पूर्णतया समझनेवालेको दुनियामें दूसरा कुछ भी जानना नहीं रहता, क्योंकि सारा ज्ञान इसमें समाया है, इसे हम ऊपर देख चुके हैं। इसमें जो न समा सके वह सत्य नहीं है, ज्ञान नहीं है तो फिर उससे सच्चा आनन्द तो मिल ही कैसे सकता है? यदि हम इस कसौटीका प्रयोग करना सीख जायँ तो तुरन्त ही हमें पता चलने लगे कि कौन-सी प्रवृत्ति करनेयोग्य है और कौन-सी त्याज्य; क्या देखनेयोग्य है, क्या नहीं, क्या पढ़नेयोग्य है, क्या नहीं।

लेकिन यह सत्य जो पारसमणि-रूप है, कामधेनु-रूप है, कैसे मिले? इसका जवाब भगवान्ने दिया है—अभ्याससे और वैराग्यसे। सत्यकी ही लगन अभ्यास है; और उसके बिना दूसरी तमाम चीजोंके लिये आत्यन्तिक उदासीनता, वैराग्य है। यह होते हुए भी हम देखा करेंगे कि एकका सत्य दूसरेका असत्य है। इससे घबड़ानेकी कोई जरूरत नहीं। जहाँ शुद्ध प्रयत्न है, वहाँ भिन्न मालूम होनेवाले सब सत्य एक ही पेड़के असंख्य भिन्न दीख पड़नेवाले पत्तोंके समान हैं। परमेश्वर भी कहाँ हर आदमीको भिन्न नहीं मालूम होता? तो भी हम यह जानते हैं कि वह एक ही है। लेकिन सत्य ही परमेश्वरका नाम है। इसलिये जिसे जो सत्य लगे वैसा वह बरते तो उसमें दोष नहीं, यही नहीं, बल्कि वही कर्तव्य है। यदि ऐसा करनेमें गलती होगी तो वह भी सुधर ही जायगी। क्योंकि सत्यके शोधके पीछे तपश्चर्या होती है यानी स्वयं दुःख सहन करना होता है, उसके लिये मरना भी पड़ता है, इसलिये उसमें स्वार्थकी तो गन्धतक नहीं होती। ऐसा निःस्वार्थ शोध करते हुए आजतक कोई ऐसा न हुआ जो आखिरतक गलत रास्तेपर गया हो। रास्ता भूलते ही ठोकर लगती है और फिर वह सीधे रास्तेपर चलने लगता है। इसीलिये सत्यकी आराधना भक्ति है और भक्ति तो 'सिरका सौदा' है, अथवा वह हरिका मार्ग है, अतः उसमें कायरताकी गुंजाइश नहीं। उसमें हार-जैसा कुछ है ही नहीं। वह तो 'मरकर जीनेका मन्त्र' है।

× × × ×

इस सिलसिलेमें हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, रामचन्द्र, इमाम हसन, हुसेन, ईसाई संत वगैराके चरित्रोंका विचार कर लेना चाहिये और सब बालक, बड़े, स्त्री-पुरुषको चलते-बोलते, खाते-पीते, खेलते, मतलब हर काम करते हुए सत्यकी रट लगाये रहनी चाहिये। ऐसा करते-करते वे निर्दोष नींद लेने लग जायँ तो क्या ही अच्छा हो! यह सत्यरूपी परमेश्वर मेरे लिये तो रत्नचिन्तामणि साबित हुआ है। हम सबके लिये हो।*

* गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तक 'सप्त-महाव्रत' कोड ७४७ से उद्धृत।

श्रीवाल्मीकीय रामायण सच्चा इतिहास है

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् मनुका वचन है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

इतिहास एवं पुराणोंके अध्ययनसे वेदोंका ज्ञान बढ़ाना चाहिये—परिष्कृत करना चाहिये। जो कोई मनुष्य इतिहास-पुराणोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना ही वेदोंमें हाथ डालता है, उससे वेद डरते हैं कि कहीं यह हमपर प्रहार न कर बैठे—अर्थका अनर्थ न कर डाले।

प्रथम तो वेदोंके अध्ययनका अधिकार ही सबको नहीं है। फिर वेदोंकी भाषा अत्यन्त प्राचीन एवं अर्थ अत्यन्त गम्भीर एवं दुरूह होनेके कारण उसे सब लोग सुगमतासे समझ नहीं सकते। युग-धर्मके अनुसार वेदोंके पठन-पाठनकी परम्परा भी क्रमशः उठती चली जा रही है। ब्राह्मणोंमें भी वैदिक विद्वान् खोजनेपर भी कठिनतासे मिलते हैं। कारण यही है कि वेदोंका सांगोपांग अध्ययन करनेके लिये प्रचुर समय एवं प्रखर बुद्धिकी आवश्यकता है और वर्तमान युगमें दोनोंकी ही न्यूनता दृष्टिगोचर हो रही है। मनुष्यकी आयु और बुद्धि दोनोंका ही क्रमशः ह्रास होता चला जा रहा है। वेदोंके अध्ययनके लिये ब्रह्मचर्यकी भी परमावश्यकता है और ब्रह्मचर्याश्रमका तो प्रायः लोप ही होता जा रहा है। इन्हीं सब बातोंका विचार करते हुए हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियोंने वैदिक ज्ञानको सरल एवं सुबोध भाषामें एवं रोचक ढंगसे जन-साधारणके सामने रख देनेके उद्देश्यसे ही इतिहास एवं पुराणोंकी रचना की। इतिहास-ग्रन्थोंमें रामायण और महाभारत—ये दो ही ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं। दोनों ही ग्रन्थ भारतीय वाङ्मयके मुकुट-मणि एवं आर्यसभ्यताके गौरवरूप हैं। दोनोंमें ही भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, नीति एवं धर्मकी शिक्षा कूट-कूटकर भरी हुई है। एकमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दिव्य लीलाओंका वर्णन है तो दूसरेमें मालामें सूतकी भाँति लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा ओत-प्रोत है। दोनोंमें ही भारतीय संस्कृतिका जीता-जागता रूप दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत साहित्यमें दृश्य एवं श्रव्य काव्यके जितने भी ग्रन्थ बने, उन सबकी रचना प्रायः इन्हीं दोनों ग्रन्थोंके आधारपर हुई है।

आर्य-जातिके ऋषिप्रणीत सच्चे इतिहास होनेके साथ-साथ दोनों ही ग्रन्थोंका कविताकी दृष्टिसे भी बहुत ऊँचा स्थान है। फिर भी महाभारतकी 'इतिहास' संज्ञा ही है, उसकी काव्योंमें गणना नहीं है। उसमें महाकाव्यके लक्षण भी नहीं घटते। इतिहासके साथ-साथ 'आदिकाव्य' कहलानेका गौरव तो वाल्मीकीय रामायणको ही प्राप्त है। काव्यकी विशेषता यही है कि उसके द्वारा हमें 'कान्ता-सम्मित' उपदेश मिलता है। जहाँ वेद '**सत्यं वद**', '**धर्मं चर**', '**आचारान्मा प्रमदः**', '**प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः**' आदि विधि-वाक्योंके द्वारा गुरुकी भाँति उपदेश करते हैं, और इतिहास-पुराण हमें '**रामवद्वर्तितव्यं न रावणवत्**' इस रूपमें मित्रकी भाँति हितपूर्ण सलाह देते हैं, वहाँ काव्य हमें कान्ताकी भाँति रोचक एवं मधुर शब्दोंमें प्यारभरी मृदु मन्त्रणा देते हैं। '**मातृदेवो भव**', '**पितृदेवो भव**' इत्यादि वेदवाक्योंका हमपर उतना असर नहीं होता, जितना भगवान् श्रीरामकी मातृभक्ति एवं पितृभक्तिके काव्यमय वर्णनका। इस प्रकारके 'कान्ता-सम्मित' उपदेश देनेवाले काव्योंमें वाल्मीकीय रामायणका स्थान सर्वोपरि है। रचना-कौशल एवं काव्य-वस्तु दोनोंकी दृष्टिसे ही रामायण जगत्के समस्त काव्योंका शीर्षस्थानीय है।

मनुष्यको कैसी स्थितिमें किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये; किस प्रकार अपने कुटुम्बके एवं संसारके दूसरे व्यक्तियोंको सुख पहुँचानेके लिये अपने सब प्रकारके सुखोंका त्याग करके स्वयं हर तरहका कष्ट सहन करनेको तैयार रहना चाहिये; किस प्रकार सत्य, न्याय, सदाचार और प्रतिज्ञा-पालनपर दृढ़ रहकर जीवनको आदर्श बनाना चाहिये—इत्यादि सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाओंका तो वाल्मीकीय रामायण भंडार ही है। इसमें पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी पवित्र मनुष्य-लीलाका सर्वांग-सुन्दर चित्रण किया गया है।

साथ ही जगज्जननी जानकीका आदर्श पातिव्रत्य, भरतका अनुपम भ्रातृप्रेम और त्याग, राजा दशरथका अपूर्व वात्सल्य-प्रेम, कौसल्याका महान् सौजन्य, श्रवणकी अनुकरणीय पितृभक्ति, हनुमान्‌जीकी अतुलनीय स्वामिभक्ति, विभीषणकी असाधारण न्यायप्रियता, अयोध्याकी प्रजाका श्रीरामके प्रति स्वाभाविक स्नेह तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका सबके साथ श्रद्धा, दया एवं प्रेमपूर्ण यथायोग्य बर्ताव—इत्यादि सभी विषयोंका सांगोपांग वर्णन हुआ है। इसके श्लोक बड़े ही मधुर, काव्योचित गुणों एवं अलंकारोंसे विभूषित, ताल-स्वरके साथ गाये जानेयोग्य एवं गम्भीर अर्थसे युक्त हैं। इसमें शृंगारादि सभी रसोंका बड़े ही सुन्दर ढंगसे समावेश किया गया है। करुण-रस तो इस ग्रन्थका प्राण ही है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सभी दृष्टियोंसे अत्यन्त उपादेय है।

वाल्मीकीय रामायण उच्च कोटिका महाकाव्य होनेके साथ ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अवतार-लीलाका सच्चा इतिहास है—इस बातको हमें नहीं भूलना चाहिये। साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीने ग्रन्थकर्ताको ग्रन्थ-रचनाके पूर्व यह वरदान दिया था कि 'राम-चरितसम्बन्धी सारी बातें तुम्हें अपने-आप विदित हो जायँगी।' इसी वरदानके अनुसार सारी बातोंको भलीभाँति जानकर महर्षिने उन्हें अपने चरित-नायकके अवतारकालमें ही श्लोकबद्ध करके उन्हींके पुत्र कुश और लवको कण्ठस्थ करा दिया तथा उन्हींके द्वारा आगे होनेवाली घटनाओंसहित पूरा-का-पूरा चरित्र स्वयं चरित-नायकोंको भरी सभामें सुनवा दिया। इससे बढ़कर इस ग्रन्थकी ऐतिहासिकताका प्रमाण और क्या हो सकता है। ऐसी दशामें इसमें असत्य, प्रमाद अथवा अतिशयोक्तिकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

बोधकथा—

भिक्षाका उपयोग

समर्थ स्वामी रामदासजीका यह नियम था कि वे स्नान एवं पूजासे निवृत्त हो भिक्षा माँगनेके लिये केवल पाँच ही घर जाते थे और कुछ-न-कुछ लेकर ही वहाँसे लौटा करते।

एक बार उन्होंने एक घरके द्वारपर खड़े होकर *'जय-जय रघुवीर समर्थ'* का घोष किया ही था कि गृहस्वामिनी, जिसकी थोड़ी ही देरपूर्व अपने पतिसे कुछ कहा-सुनी हुई थी और जो गुस्सेमें थी, बाहर आयी और चिल्लाकर बोली, तुमलोगोंको भीख माँगनेके अलावा कोई दूसरा धंधा ही नहीं। मुफ्त मिल जाता है, अतः चले आते हो। मेरे घरमें तुम्हारी दाल न गलेगी, जाओ कोई दूसरा घर ढूँढ़ो।

स्वामीजी हँसकर बोले, माताजी! मैं खाली हाथ किसी द्वारसे वापस नहीं जाया करता। कुछ-न-कुछ तो लूँगा ही।

वह गृहस्वामिनी भोजनोपरान्त चौका लीप रही थी और उसके हाथमें लीपनेका कपड़ा था। वह उसे उनकी झोलीमें डालते हुए बोली, तो ले यह कपड़ा और कर अपना मुँह काला यहाँसे।

स्वामीजी प्रसन्न हो वहाँसे निकले और नदी पहुँचे। उन्होंने उस कपड़ेको साफ किया और दीप जलानेके लिये उसकी बत्तियाँ बनायीं तथा वे एक देवालय पहुँचे। इधर जब वे वह कपड़ा धो रहे थे, तो उधर उस स्त्रीका हृदय भी पसीजने लगा और उसे पश्चात्ताप होने लगा कि उसने व्यर्थ ही एक सत्पुरुषका निरादर किया। उसे इतना रंज हुआ कि वह विक्षिप्त हो उन्हें खोजनेके लिये दौड़ पड़ी। अन्तमें वह उस देवालयमें आ पहुँची। वह स्वामीजीके चरणोंपर गिर पड़ी और बोली, 'देव! मैंने आप-सरीखे धर्मात्माका निरादर किया। मुझे क्षमा करें' और उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह निकली।

रामदासजी बोले—देवि! तुमने उचित ही भिक्षा दी थी। तुम्हारी भिक्षाका प्रताप है कि यह देवालय प्रकाशित हो उठा है, अन्यथा तुम्हारा दिया हुआ भोजन तो जल्द ही खत्म हो गया होता। [श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर]

भीख

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'नारायण! नारायण!!'

'कौन है?'

'एक भिखारी'

'ठहरो, लाती हूँ'

इतना कहकर नन्दरानीने बहुमूल्य हीरे-मोतियोंका थार भरा और स्वयं लेकर बाहर आयीं। परंतु वह देखते ही सहम गयीं। देखा गलेमें साँप, जटाजूटमें साँप, साँपका कंकण, हाथमें डमरू और सुन्दर गौर-शरीरपर भभूत रमाये एक मस्त योगी खड़ा है। समाधिके नशेमें उसकी आँखें चढ़ी जा रही हैं। नन्दरानीने समझा कि कोई सिद्ध योगेश्वर है। वह बोली—

'नाथजी! यह लो भीख, मेरे लालको असीस दो, जिससे उसके सारे अमंगल टल जायँ।'

'मैया! तेरी यह भीख मुझे नहीं चाहिये। मुझे तो एक बार अपने लालका मुखड़ा दिखला दे। उसे देखते ही मेरे सब अमंगल टल जायँगे।'

'नाथजी! मेरा साँवरा अभी निरा बच्चा है, तुम्हारे भेषको देखकर डर जायगा। भीख थोड़ी हो तो और ला दूँ, देखो, मेरे लालका किसी तरह अमंगल न हो, उसके सारे कुग्रह टल जायँ।'

'अरी मैया! तेरा लाल कालका भी काल है, उसीके डरसे सूर्य, चन्द्र, यमराज सब अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। वह किससे डरेगा? साक्षात् मृत्युदेवता भी उसके नामसे डर जाते हैं। मुझे और कोई भीख नहीं चाहिये माता! मुझे तो एक बार अपने उस सलोने साँवरेकी हँसीली, छबीली, निराली, मतवाली, काली छबिका दर्शन करा दे। बस, एक बार उसकी झाँकी कर लेने दे।'

'ना, ना, नाथजी! मैं अपने लालको बाहर न लाऊँगी। आजकल व्रजमें असुरोंका बड़ा उत्पात है। अभी उस दिन पूतना आयी थी। भगवान्ने रक्षा की। मैं अभी-अभी उसकी माँग सँवारकर और उसकी आँखोंमें काजल डालकर आयी हूँ, कहीं नजर लग जाय तो फिर तुम्हें कहाँ ढूँढ़ती फिरूँ?'

शिवजी हँसकर मन-ही-मन यशोदाके भाग्यकी सराहना करने लगे। बोले—'मेरी मैया! तू धन्य है, जो सर्वाधार त्रिलोकीनाथको अपनी गोदमें खिलाती है, अपने हाथों शृंगारके सागरका शृंगार करती है, तेरे समान बड़भागी कौन होगा? अरी! जिसकी भृकुटि-विलाससे सारे विश्वका सृजन और संहार होता है, उसको नजर कैसी?'

'तुम क्या कहते हो, बाबा! मैं यह सब नहीं समझती। तुम्हारे वेदान्तका हम गँवारी ग्वालिनोंको क्या पता? भीख लेनी हो तो ले लो, मेरे श्यामसुन्दरको भूख लगी होगी, मैं अब और यहाँ नहीं ठहर सकती।'

'माँ! मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ, एक बार मुझे उस प्राणधनके दर्शन करा दे, तेरा मंगल होगा, नहीं तो, मैं यहीं धरना दिये बैठा रहूँगा, बिना दर्शन किये तो यहाँसे हटूँगा नहीं।'

यशोदा साधु बाबाके दु:खसे दुखी हुई, उसका कोमल हृदय द्रवित हो गया, भगवान्ने मति फेर दी। उसने कहा—'अच्छा, लाती हूँ, पर अधिक देर न ठहरना भला! देखकर ही चले जाना।'

इतना कहकर वह अन्दर गयी और नजरसे बचानेके लिये माथेपर काजलकी बिंदी लगाकर लालको गोदमें लिये बाहर लौटी। देवदेव शंकर त्रिभुवन-मोहिनी बालछबिको देखकर मुग्ध हो गये। एकटक देखने लगे। यशोदाने कहा—'लो, अब जाती हूँ, बहुत देर हो गयी।'

अब, महाराजकी प्रेम-समाधि भंग हुई। वे बोले—'तनिक ठहर जा मैया! मुझे दो बात तो कर लेने दे।' शिवजीने नेत्रोंकी मूक भाषामें ही मोहन प्यारेसे बातें कीं। फिर मुग्ध होकर गाने लगे—

सफल मम ईस जीवन आज।
निरखि अगुन अरूप को गुनपूर्न छबिमय साज॥
सच्चिदानँद अलख, अज, अव्यक्त, अमित अनंत।
प्रगट सो सिसुरूप रस-सौन्दर्य-निधि भगवंत॥
धन्य व्रजके गोप-गोपी गौ मयूर तृनादि।
सगुन बपु धरि रहत जिनमहँ ब्रह्म अचल अनादि॥
सर्वसक्ति समेत पूर्न प्रभाव सह परमेस।
करत लीला चित्र मधुर सो धारि बालक भेस॥

दोष-दर्शनका त्याग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधकको चाहिये कि वह दोष-दर्शनको सर्वथा त्याग दे, क्योंकि दोष करनेकी अपेक्षा दोषोंका चिन्तन अधिक पतन करनेवाला है। दोषोंको क्रियारूपमें करनेमें तो बहुत कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, परंतु दोषोंके चिन्तनमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं प्रतीत होती। इस कारण उनके चिन्तनमें रस लेनेकी आदत स्वाभाविक-सी हो जाती है।

इस आदतका त्याग करनेके लिये साधकको अपने दोष देखनेकी आदत डालनी चाहिये। जितनी गहराईसे वह अपने दोष देखेगा, उतना ही उसको अपने दोषोंका अधिक भास होगा एवं जैसे-जैसे वह उन दोषोंको सचमुच दोष मानता जायगा—वे उससे दूर होते चले जायँगे। मनुष्य यह समझकर भी कि मुझमें अमुक दोष हैं, किसी-न-किसी अंशमें उसमें रस लेता रहता है और उसमें गुण-बुद्धि कर लेता है। यही कारण है कि अपनेमें जिस दोषको मनुष्य स्वीकार करता है, उसे भी छोड़ता नहीं। उससे चिपका रहता है। अतः साधकको चाहिये कि अपने दोषको गहराईसे देखे और विचारपूर्वक उसे छोड़नेका दृढ़ संकल्प करे। जो भूल अपनी समझमें आ जाय, उसको पुनः नहीं दोहरावे। ऐसा करनेसे साधकका जीवन बहुत शीघ्र परिवर्तित हो सकता है। अपने दोषोंको देखकर उनका त्याग कर देना ही लाभप्रद है। उनका चिन्तन करना नहीं; क्योंकि चिन्तन करनेसे उनका राग नहीं मिटता। मनुष्यका जीवन सर्वथा दोषयुक्त नहीं होता, उसमें गुण भी रहता ही है; परंतु उस गुणमें जो अभिमान है, वह भी दोष ही है। अतः साधकको गुणोंके अभिमानका भी त्याग कर देना चाहिये। दोषोंकी उत्पत्ति न हो और गुणोंका अभिमान न हो, यही वास्तविक निर्दोषता है।

प्राणीके अन्तःकरणमें जिन दोषोंके कारण अशुद्धि या मलिनता है, वे दोष कहीं बाहरसे आये हुए नहीं हैं, स्वयं उसीके बनाये हुए हैं। अतः उनको निकालकर अन्तःकरणको शुद्ध बनानेमें यह सर्वथा स्वतन्त्र है।

मनुष्य सोचता है और कहता है कि 'मेरे प्रारब्ध ही कुछ ऐसे हैं, जो मुझे भगवान्‌की ओर नहीं लगने देते, मुझपर भगवान्‌की कृपा नहीं है। आजकल समय बहुत खराब है। सत्संग नहीं है। आसपासका वातावरण अच्छा नहीं है। शरीर ठीक नहीं रहता। परिवारका सहयोग नहीं है। अच्छा गुरु नहीं मिला। परिस्थिति अनुकूल नहीं है। एकान्त नहीं मिलता। समय नहीं मिलता' आदि, इसी प्रकारके अनेक कारणोंको वह ढूँढ़ लेता है, जो उसे अपने आध्यात्मिक विकासमें रुकावट डालनेवाले प्रतीत होते हैं। और इस मिथ्या धारणासे या तो वह अपनी उन्नतिसे निराश हो जाता है या इस प्रकारका सन्तोष कर लेता है कि भगवान्‌की जैसी इच्छा, वे जब कृपा करेंगे, तभी उन्नति होगी। परंतु वह अपनी असावधानी तथा भूलकी ओर नहीं देखता।

साधकको सोचना चाहिये कि जिन महापुरुषोंने भगवान्‌की इच्छापर अपनेको छोड़ दिया है, उनके जीवनमें क्या कभी निरुत्साह और निराशा आती है? क्या वे किसी भी परिस्थितिमें भगवान्‌के सिवा किसी व्यक्ति या पदार्थको अपना मानते हैं? उनके मनमें क्या किसी प्रकारकी भोग-वासना शेष रहती है? यदि नहीं, तो फिर अपने बनाये हुए दोषोंके रहते भगवान्‌की इच्छाका बहाना करके अपने मनमें झूठा सन्तोष मानना या आध्यात्मिक उन्नतिमें दूसरे व्यक्ति, परिस्थिति आदिको बाधक समझना अपने-आपको और दूसरोंको धोखा देनेके सिवा और क्या है?

यह सोचकर साधकको यह निश्चय करना चाहिये कि भगवान्‌की प्रकृति जो कि जगत्-माता है, उसका विधान सदैव हितकर ही होता है, वह किसीके विकासमें रुकावट नहीं डालती, वरं सहायता ही करती

रहती है। कोई भी व्यक्ति या समाज किसीके साधनमें बाधा नहीं डाल सकता। कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं है, जिसका सदुपयोग करनेपर वह साधनमें सहायक न हो। भगवान्‌की कृपाशक्ति तो सदैव सब प्राणियोंके हितमें लगी हुई है। जब कभी मनुष्य उसके सम्मुख हो जाता है, उसी समय उसका हृदय भगवान्‌की कृपासे भर जाता है।

साधकको चाहिये कि उसका अपना बनाया हुआ जो यह महान् दोष है कि जिनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं है, जो किसी प्रकार भी अपने नहीं हो सकते, उन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके संघातरूप शरीरको और उससे सम्बन्धित पदार्थोंको अपना मान लिया है तथा जिनपर किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिये, उनपर विश्वास कर लिया है एवं जिन परम सुहृद् परमेश्वरपर विश्वास करना चाहिये, जो सब प्रकारसे विश्वासके योग्य हैं और सजातीय होनेके नाते जो सचमुच सब प्रकारसे अपने हैं, उनपर न तो विश्वास करता है न उन्हें अपना मानता है और न वर्तमानमें उनकी आवश्यकताका ही अनुभव करता है। यही एक ऐसा महान् दोष है, जिससे सब प्रकारके बड़े-बड़े दोष उत्पन्न हुए हैं और होते रहते हैं। अत: इस दोषका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

बोधकथा—

गरीबके दानकी महिमा

गुजरातकी प्रसिद्ध राजमाता मीनल देवी बड़ी उदार महिला थीं। वे सवा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका दर्शन करने गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने स्वर्ण-तुलादान आदि दिये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसंगमें पुत्र राजा सिद्धराजने प्रजाका लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीनलके मनमें यह अभिमान आ गया कि मेरे समान दान करनेवाली जगत्‌में दूसरी स्त्री नहीं है। रात्रिको भगवान् सोमनाथजीने स्वप्नमें कहा—'मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब स्त्री यात्रा करने आयी है, तू उससे उसका कुछ पुण्य माँग।'

सबेरे मीनल देवीने सोचा, 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है। रुपये देकर पुण्य ले लूँगी।' राजमाताने उस गरीब स्त्रीकी खोजमें आदमी भेजे। वे लोग यात्रामें आयी हुई एक गरीब ब्राह्मणीको ले आये। राजमाताने उससे कहा—तुम अपना पुण्य मुझे दे दो और बदलेमें अपनी इच्छाके अनुरूप धन ले लो। पर उसने किसी तरह भी इसे स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—तुमने ऐसा क्या पुण्य किया है—मुझे बताओ तो सही।

ब्राह्मणीने कहा—'मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसे-तैसे बिना नमकका थोड़ा-सा सत्तू दिया। उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की, आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुएसे मैंने पारणा की। मेरा पुण्य ही क्या है? आप बड़ी पुण्यवती हैं, आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र सभी राजा हैं। यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका लगान माफ करवा दिया। सवा करोड़ मोहरोंसे शंकरजीकी पूजा की। इतना बड़ा पुण्य करनेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर नाराज न हों तो मैं कुछ आपकी सेवामें निवेदन करूँ।'

राजमाताने वैसा विश्वास दिलाया। ब्राह्मणीने कहा—'मैंने सुना है कि बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, शक्ति होनेपर भी सहन करना और दरिद्र होकर भी दान करना—ये बातें अक्षय पुण्यप्रद होती हैं।'

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीनल देवीका अभिमान नष्ट हो गया। उन्हें विश्वास हुआ कि शंकरजीने ही कृपाकर ब्राह्मणीको भेजा था।

साधकोंके प्रति—

सन्त-संगकी महिमा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रीचैतन्य-महाप्रभुके कई शिष्य हुए हैं। उनमें एक यवन हरिदासजी महाराज भी थे। वे थे तो मुसलमान, पर चैतन्य-महाप्रभुके संगसे भगवन्नाममें लग गये। सनातन धर्मको स्वीकार कर लिया। उस समय बड़े-बड़े नवाब राज्य करते थे, उनको बड़ा बुरा लगा। लोगोंने भी शिकायत की कि यह काफिर हो गया। इसने हिन्दूधर्मको स्वीकार कर लिया। उन लोगोंने सोचा—'इसका कोई-न-कोई कसूर मिले तो फिर अच्छी तरहसे इसको दण्ड देंगे।'

एक वेश्याको तैयार किया और उससे कहा—'यह भजन करता है, इसको यदि तू विचलित कर देगी तो बहुत इनाम दिया जायगा।' वेश्याने कहा—'पुरुष जातिको विचलित कर देना तो मेरे बायें हाथका खेल है।' ऐसे कहकर वह वहाँ चली गयी, जहाँ हरिदासजी एकान्तमें बैठे नाम-जप कर रहे थे। वह पासमें जाकर बैठ गयी और बोली—'महाराज, मुझे आपसे बात करनी है।' हरिदासजी बोले—'मुझे अभी फुरसत नहीं है।' ऐसा कहकर भजनमें लग गये। ऐसे उन्होंने उसे मौका दिया ही नहीं। तीन दिन हो गये, वे खा-पी लेते और फिर *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'॥* मन्त्र-जपमें लग जाते। ऐसे वेश्याको बैठे तीन दिन हो गये, पर महाराजका उधर खयाल ही नहीं है, नाममें ही रस ले रहे हैं। अब उस वेश्याका भी मन बदला कि तू कितनी निकृष्ट और पतित है। यह बेचारा सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगा हुआ है, इसको विचलितकर नरकोंकी ओर तू ले जाना चाहती है, तेरी दशा क्या होगी? इतना भगवन्नाम सुना, ऐसे विशुद्ध सन्तका संग हुआ, दर्शन हुए। अब तो वह रो पड़ी एकदम ही 'महाराज! मेरी क्या दशा होगी, आप बताओ?'

जब महाराजने ऐसा सुना तो बोले—'हाँ, हाँ! बोल अब फुरसत है मुझे। क्या पूछती हो?' वह कहने लगी—'मेरा कल्याण कैसे होगा? मेरी ऐसी खोटी बुद्धि है, जो आप भजनमें लगे हुएको भी नरकमें ले जानेका विचार कर रही थी। मैं आपको पथभ्रष्ट करनेके लिये आयी। नवाबने मुझे कहा कि तू उनको विचलित कर दे, तेरेको इनाम देंगे। मेरी दशा क्या होगी?' तो उन्होंने कहा 'तुम नाम-जप करो, भगवान्‌का नाम लो।'

फिर बोली—'अब तो मेरा मन भजन करनेका ही करता है, भविष्यमें कोई पाप नहीं करूँगी, कभी नहीं करूँगी।' हरिदासजीने उसे माला और मन्त्र दे दिया। 'अच्छा, यह ले माला! बैठ जा यहाँ और कर हरि भजन।' उसे वहाँ बैठा दिया और वह—*'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'* इस मन्त्रका जप करने लगी। हरिदासजीने सोचा—'यहाँ मेरे रहनेसे नवाबको दुःख होता है तो छोड़ो इस स्थानको और दूसरी जगह चलो।'

एकान्तमें दो-तीन दिनतक वेश्या बैठी रही, फिर भी हरिदासजीका मन नहीं चला—इसमें कारण क्या था? 'राम' नामका जो रस है, वह भीतरमें आ गया। अब बाकी क्या रहा! सज्जनो! संसारके रससे सर्वथा विमुख होकर जब भगवन्नाम-जपमें प्रेमपूर्वक लग जाओगे, तब यह भजनका रस स्वतः आने लगेगा। इसलिये 'राम' नाम रात-दिन लो, कितनी सीधी बात है!

नाम लेने का मजा जिसकी जुबाँ पर आ गया।
वो जीवन्मुक्त हो गया चारों पदार्थ पा गया॥

किसी व्यापारमें मुनाफा कब होता है? जब वह बहुत सस्तेमें खरीदा जाय, फिर उसका भाव बहुत महँगा हो जाय, तब उसमें नफा होता है। मान लो, दो-तीन रुपये मनमें अनाज आपके पास लिया हुआ है और भाव चालीस, पैंतालीस रुपये मनका हो गया। लोग कहते हैं, अनाजका बाजार बड़ा बिगड़ गया, पर आपसे पूछा जाय तो आप क्या कहेंगे? आप कहेंगे कि मौज हो गयी। आपके लिये बाजार खराब नहीं हुआ। ऐसे ही 'राम' नाम लेनेमें सत्ययुगमें जितना समय लगता था, उतना ही समय अब कलियुगमें लगता है। पूँजी उतनी ही खर्च होगी और भाव होगा कलियुगके बाजारके अनुसार। कितना सस्ता मिलता है और कितना मुनाफा होता है इसमें! कलियुगमें नामकी महिमा विशेष है।

भवसागरकी नाव

(वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)

संसार-सागरमें अनेक जीव विविध दुःख-सुखरूपी तरंगोंमें डूब-उतरा रहे हैं। महात्मा कबीर कहते हैं—'इस संसार-सागरसे पार जानेके इच्छुक सज्जनो! यदि आप यथार्थमें उस पार (भगवद्धाम) जाना चाहते हो तो भगवत्कथा और श्रीहरि-संकीर्तनरूपी दृढ़ नौकापर आरूढ़ होकर अनायास ही संसार-सागरको पार कर सकते हो। इसके सिवाय इस कराल कलिकालमें अन्य कोई उपाय संसार-सागरसे पार जानेका है ही नहीं।'

कथा कीर्तन कलि विषै, भवसागर की नाव।
कह कबीर या जगत में, नाहिंन आन उपाव॥

श्रीहरि-संकीर्तनमें कोई खास परिश्रम भी नहीं है।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय॥
श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

इस प्रकार यथारुचि प्रेमपूर्वक, जो भी भगवन्नाम-संकीर्तन आपको प्रिय हो, उसीका प्रातः-सायं थोड़ा-सा समय निकालकर संकीर्तन कीजिये। धीरे-धीरे आनन्दामृतकी वर्षा-सी होने लगती है। भगवन्नाम, भगवत्कथा ही यथार्थमें अमृत है। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव कहते हैं—

प्राणनाथ! तुम्हारी कृपामें कुछ कसर नहीं है और मेरे दुर्भाग्यमें कुछ सन्देह नहीं है। तुमने नन्दनन्दन, कृष्णचन्द्र, वृन्दावनचन्द्र, राधारमण, गोपाल गिरधारी, राम-श्याम—ये कितने सुन्दर सुमधुर कर्णप्रिय मनोहारी नाम प्रकट किये हैं। फिर इन नामोंमें भी तुमने अपनी अपार शक्ति भर दी है। भगवन्नाम लेनेमें देश, काल, पात्रका नियम होता तो कुछ कठिनता भी थी। सो तुमने इन बातोंका कोई नियम निर्धारित नहीं किया। पुरुष हो, स्त्री हो, नपुंसक हो, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, शूद्र हो, आर्य हो, अनार्य हो अर्थात् कोई भी क्यों न हो, सभी प्राणी शुचि, अशुचि किसी भी अवस्थाका विचार न करते हुए सभी समयमें, सर्वत्र उन भगवन्नामोंका संकीर्तन कर सकते हैं। हे भगवन्! तुम्हारी तो जीवोंपर इतनी महत्कृपा और मेरा ऐसा दुर्भाग्य कि तुम्हारे इन सुमधुर नामोंमें सच्चे हृदयसे अनुराग ही उत्पन्न नहीं होता।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैव मीदृशमिहाजनि नानुरागः॥

गोस्वामी तुलसीदासजी लाखोंमें एक बात बताते हुए कहते हैं कि यदि आप जीवन सुधारना चाहते हैं, तो रामनाम लेना प्रारम्भ कर दीजिये—

अल्प तौ अवधि जीव, तामें बहुत सोच पोच
करिबे कहँ बहुत हैं, पे काह काह लीजिये।
पार ना पुरान हूँ कौ, वेद हू कौ अंत नाहीं।
बानी तौ अनेक चित्त कहाँ कहाँ दीजिए॥
काव्य की कला अनेक, छन्द कौ प्रबन्ध बहु
राग तौ रसीले, रस कहाँ कहाँ पीजिये।
लाखन में एक बात तुलसी बताये जात
जन्म जो सुधारा चाहो, तो रामनाम लीजिये॥

जीवन क्षणभंगुर है। कलिकाल निरन्तर घातमें है। अतः प्रेमपूर्वक चलते, फिरते, बैठते, उठते, कार्य करते अहर्निश भगवन्नामोंका जिह्वासे स्मरण कीजिये। धीरे-धीरे मन भी भगवन्नाम-स्मरणमें साथ देगा।

क्षण भंगुर जीवन की कलिका
कल प्रात में जाने खिली न खिली।
मलयाचल की शुचि शीतल मंद
सुगंधि समीर चली न चली।
कलिकाल कुठार लिये फिरता
तन 'नम्र'से चोट झिली न झिली।
भजले हरि नाम अरी रसना
फिर अंत समय में हिली न हिली॥

स्वात-पियत, बैठत-उठत, ठाले करते काम।
कृष्ण दास तुम अहर्निश, बोलो राधेश्याम॥

हमारे श्रीमहाराजजी (श्रीहरिबाबाजी) श्रीहरि-संकीर्तन, श्रीहरिकथा एवं भक्तचरित्रसे अनन्य प्रेम करते थे। उनका अधिकांश समय श्रीहरिसंकीर्तन, भगवत्कथा, भक्तगाथा, स्वाध्याय एवं सत्संगमें व्यतीत होता था। आइये, हम भी अपने जीवनका कुछ अंश श्रीहरि-संकीर्तन, श्रीहरि-कथा, स्वाध्याय एवं सत्संगमें लगाकर अपने जीवनको सफल बनायें।

मन भज ले कृष्ण कन्हैया। तेरी पार लगेगी नैया॥

बोधकथा—

मूल्य उपयोगिताका होता है

संत तिरुवल्लुवर दक्षिण भारतके बहुत बड़े संत थे। वे करघेपर कपड़े बुनकर अपनी जीविका चलाते थे। उनका एक सबसे बड़ा गुण था कि वे कभी भी किसी भी हालतमें किसीपर क्रोध नहीं करते थे।

एक बार कुछ शरारती लड़कोंने आपसमें यह तय किया कि हम तिरुवल्लुवरको गुस्सा दिलाकर दिखलायेंगे। एक दिन जब तिरुवल्लुवर अपने करघेपर बुनी हुई कुछ धोतियाँ बाजारमें बेचनेको ले गये और वहाँ जमीनपर कपड़ा बिछाकर बैठकर ग्राहककी राह देखने लगे, तब कुछ देर बाद वे लड़के आये। एकने एक धोती उठाकर पूछा—बाबा! इसका दाम क्या है?

तिरुवल्लुवरने बताया—बीस रुपये।

लड़केने कुछ जवाब देनेके बजाय धोती दो टुकड़ेमें फाड़कर पूछा—इस आधेका दाम क्या होगा?

तिरुवल्लुवर बोले—यह लुंगीके काम आ जायगी। इसका दस रुपया दाम लगेगा।

लड़केने उसके भी दो टुकड़े कर दिये, फिर आधे टुकड़ेका दाम पूछा। संतने अब भी गुस्सा नहीं किया, कहा—अँगोछाके कामका है। पाँच रुपया दे दो।

लड़कोंका इरादा पूरा नहीं हो रहा था। उस टुकड़ेके भी दो भाग कर दिये। पूछा—इस एकका दाम बताओ?

तिरुवल्लुवरको अब भी क्रोध नहीं आया। कहा—अब यह किसी कामका नहीं। इसकी कोई कीमत नहीं।

इतना करनेके बाद भी तिरुवल्लुवरको क्रोध नहीं आया तो लड़के बड़े शर्मिन्दा हुए और माफी माँगते हुए बोले—हमने आपको दुखी किया, माफ करें। धोतीका पूरा मूल्य बीस रुपया ले लीजिये।

तिरुवल्लुवरने सहज भावसे कहा—जो धोती नष्ट हो गयी, उसकी कोई उपयोगिता न रही, उसका पैसा तो तुम दे रहे हो, पर जिस किसानने मेहनतकर कपास उगाया, जिस धुनकेने रूई धुनी, जिसने उसका सूत काता, जिसने करघेपर बुनकर उन सबकी मेहनतसे उसे ऐसा उपयोगी बनाया, जिससे किसीकी लज्जा ढँकी रहे। शीत-तापमें ओढ़कर शरीरको बचानेके जो काम आती, उन सबकी मेहनत और इसकी उपयोगिता जो नष्ट हो गयी, उसका मूल्य कौन देगा? इसलिये बच्चो! तुमने जो यह काम किया है, उससे एक धोती ही निर्मूल्य नहीं हुई है, बल्कि कइयोंकी मेहनत तथा इसकी जो उपयोगिता नष्ट हुई है, उसका मूल्य अब कोई नहीं दे सकता। हाँ, अगर देना ही चाहते हो तो यह वचन दो कि आगे ऐसा कोई काम नहीं करोगे, जिससे किसी वस्तुकी उपयोगिता ही नष्ट हो जाय। वस्तुका मूल्य तो दिया जा सकता है, पर उपयोगिताका मूल्य नहीं दिया जा सकता।

वे लड़के संत तिरुवल्लुवरके चरणोंमें गिरकर माफी माँगने लगे। संतने हँसकर आशीर्वाद देते हुए कहा—अगर तुम्हारा मन निर्मल हो गया हो तो समझो, मुझे अनमोल मूल्य मिल गया है। [विद्यावाचस्पति श्रीअमरनाथजी शुक्ल]

कृष्णावतार पूर्णावतार है

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

किसी अवतारके अवतरणका प्रयोजन श्रीमद्भगवद्-गीतामें दिया गया है। सज्जनोंकी सुरक्षा, दुष्टोंका नाश एवं धर्मकी स्थापना। भगवान् कृष्णके अवतरणका प्रयोजन भी इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये ही हुआ था। कृष्णका प्रत्येक कार्य धर्मकी कसौटी है। उनका चरित्र भी शुद्ध, सात्त्विक है। 'रज' और 'तम'का वहाँ स्पर्श भी नहीं है। युधिष्ठिर महाराजके यज्ञमें आगन्तुकोंके चरण-प्रक्षालनका काम आपने लिया था। महाभारत-युद्धमें अर्जुनके सारथी बने थे। इन बातोंसे बढ़कर निरभिमानिता क्या हो सकती है। धर्मके प्रधान अंग सत्यमें आप इतने सुदृढ़ थे कि शिशुपालकी माताको शिशुपालके सौ अपराध सहन करनेका वचन दे दिया था। युधिष्ठिरके यज्ञ-सभामें शिशुपालके कटु वचनोंपर सबको क्रोध आ गया, किंतु आप सौकी पूर्तितक चुपचाप रहे, सौ पूर्ण होनेपर ही उसका वध किया। धर्मके सब अंगोंको आपने पूरा निभाया है। धर्मका स्वरूप सदा देश-काल-पात्रसापेक्ष होता है। एक समय एकके लिये जो धर्म है, वह विभिन्न अवसरोंपर भिन्न अधिकारीके लिये अधर्म हो जाता है। इस अधिकार-भेदके आप पूर्ण ज्ञाता थे। दुष्टोंका किसी भी प्रकार दमन आप धर्मानुमोदित मानते थे। कर्ण और अर्जुनके युद्धमें कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें चले जानेपर कर्णने अर्जुनसे शस्त्र चलाना बन्द करनेका अनुरोध करनेपर कर्णको आपने यही कहकर फटकारा था कि 'जिसने अपने जीवनके आचरणोंमें कभी धर्मका आदर नहीं किया, उसे दूसरेसे अपने लिये धर्माचरणकी आशा करनेका क्या हक है?' कालयवन जब अनुचित रूपसे बिना कारण मथुरापर चढ़ाई करने आया तो उसे धोखा देनेमें आपने कुछ भी अनुचित नहीं समझा। आपका मानना था कि अधार्मिकोंके साथ भी पूर्ण धर्मका पालन किया जाय तो अधार्मिकोंका हौसला बढ़ता है और धर्मकी हानि होती है।

रथचक्र लेकर भीष्मके सामने दौड़ते हुए आपने जब भीष्मपर आक्षेप किया कि तुमने धार्मिक होकर भी अधर्मी दुर्योधनका साथ क्यों दिया? तब भीष्मके उत्तर देनेपर कि 'राजा बड़ा देवता होता है, उसकी आज्ञा मानना ही चाहिये' के जवाबमें कृष्णने उत्तर दिया 'दुष्ट राजा कभी माननीय नहीं होता, तभी तो देखो स्वयं मैंने कंसका वध किया।' आपने यह भी बताया कि धर्मके साथ नीतिका क्या स्थान है। कहाँ धर्मको प्रधानता देनी चाहिये और कहाँ नीतिको। नीतिका उपयोग जहाँ धर्मरक्षामें होता है, वहाँ आप नीतिको प्रधानता देते हैं। कर्ण-पर्वमें महाराज युधिष्ठिरके गाण्डीव धनुषकी निन्दा करनेपर सत्य-प्रतिज्ञा निर्वाहके उद्देश्यसे युधिष्ठिरपर शस्त्र चलानेके लिये उद्यत अर्जुनको ऐसे अवसरमें सत्य-पालनका अनौचित्य बताते हुए आपने रोका था और कहा था 'बड़ोंकी निन्दा ही उनका हनन है।' कृष्णके इस वचनसे सत्यकी रक्षा हो सकी। अश्वत्थामाने जब सोते हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको मार दिया तो अर्जुनने उसके वधकी प्रतिज्ञा की और रोती-बिलखती द्रौपदीको सान्त्वना देकर अश्वत्थामाको पकड़कर लानेका वचन दिया। अर्जुन युद्धमें जीतकर अश्वत्थामाको पकड़कर द्रौपदीके सामने लाये, तब युधिष्ठिर और द्रौपदी कह रहे थे कि 'ब्रह्महत्या मत करो, इसे छोड़ दो।' भीमसेन कह रहे थे कि 'ऐसे दुष्टको अवश्य मार दो।' अर्जुनकी प्रतिज्ञा भी मारनेके पक्षमें थी। उस समय भी कृष्णने कहा 'धनहरण भी मारनेके सदृश होता है, इसके मस्तककी मणि निकाल लो।' विकल्पके इस सुझावसे ब्रह्महत्या रुक गयी।

धर्मग्रन्थोंमें आये ऐसे प्रसंग समस्याओंको सुलझानेके आदर्श उदाहरण हैं। युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके मोहको दूर करनेके लिये भी आपको ७०० श्लोकोंकी

श्रीमद्भगवद्गीताका उपदेश देना पड़ा था। यह उपदेश तभी समाप्त हुआ, जब अर्जुनने कह दिया 'मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैं आपके वचनका पालन करूँगा।'

बाल्यकालमें ही गोपोंद्वारा इन्द्रकी पूजा हटाकर आपने गोवर्धन-पूजाका आदेश दिया। आपका यही अभिप्राय है कि ईश्वर जब सर्वव्यापक है, तो गोवर्धन जो हमारे समीप है और जिससे हमारा सब प्रकार पालन होता है, उसे ही ईश्वरकी मूर्ति मानकर क्यों न पूजा जाय? इन्द्रकी पूजा करनेसे इन्द्र वर्षा करेगा। इस काम्य धर्मके आप सदा विरोधी रहे हैं। अपना कर्तव्य समझकर धर्मका अनुष्ठान करना, यही भगवान् कृष्णकी शिक्षा है। इसीलिये उस कालके धार्मिक नेता भगवान् वेदव्यास, बालब्रह्मचारी भीष्म एवं धर्मावतार युधिष्ठिर आदि आपको साक्षात् ईश्वर मानते थे और धर्मग्रन्थि सुलझानेमें आपका वचन ही प्रमाण मानते थे।

महाराजा परीक्षितका जब मृत दशामें जन्म हुआ, तो उसको जिलाते समय भगवान् कृष्णने कहा 'यदि मैंने आजन्म कभी धर्मका या सत्यका अतिक्रमण न किया हो, तो यह बालक जी उठे' और वह बालक जी उठा। इससे अपनी धर्मपरायणताका आदर्श और धर्मकी अलौकिक शक्ति भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं प्रकट की।

भगवान् कृष्णमें ज्ञान भी सर्वांगपूर्ण था। चाहे व्यावहारिक ज्ञान हो या राजनैतिक, चाहे धार्मिक ज्ञान हो या दार्शनिक—सबकी आपमें पूर्णता थी। आप सर्वज्ञाननिधि थे, इसके लिये आपका एक 'भगवद्गीता' का उपदेश ही पर्याप्त प्रमाण है, जिसके ज्ञानकी थाह आज पाँच हजार वर्षतक भी कोई पा न सका।

७०० श्लोकोंकी इस छोटी-सी भगवद्गीतामें नित नये-नये ज्ञान और विज्ञान प्रस्फुटित हो रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी आपके द्वारा दिये गये उपदेश आपके ज्ञानकी पूर्णताके प्रबल प्रमाण हैं। व्यवहार-जगत्‌में भी आपका ज्ञान पूर्ण विकसित है। किस उपायसे कौन-सा कार्य सिद्ध हो सकता है, यह जान लेना ही व्यावहारिक ज्ञान है। जितना व्यावहारिक ज्ञान जिसमें होगा, उतनी ही सफलता उसे मिलेगी। महाभारतमें भी आपका राजनैतिक ज्ञान भरा पड़ा है। आजके राजनीतिज्ञ आपके राजनैतिक ज्ञानका लोहा मानते हैं।

भगवान् कृष्ण पूर्ण रूपसे संसारमें रहते हुए भी अनासक्त रहे। कमलपत्रकी तरह निर्लिप्त बने रहे। इनमें आदिसे अन्ततक वैराग्यका (राग-द्वेषशून्यताका) पूर्ण विकास है। आपने गोप-गोपियोंका साथ छोड़ अक्रूरजीके साथ मथुरा जानेके बाद एक बार भी वृन्दावनकी यात्रा नहीं की। महाभारत-युद्ध अपनी नीतिसे ही चलाया, लेकिन बने रहे पार्थ-सारथी ही। बहुतसे दुष्ट राजाओंको मारा, किंतु उनके पुत्रोंको ही उनके राज्यका अधिकार दे दिया। राज्य-लोलुपता कहीं भी दिखायी नहीं दी। अपने कुटुम्बी यादवोंको जब उद्धत होते देखा, उनके द्वारा जगत्‌में अशान्तिकी आशंका हुई, तो उनका भी अपने सामने ही सर्वनाश करा दिया। वैराग्यका ही लक्षण 'समता' है, जो आपके आचरणमें व्याप्त है। अपनी सभी पटरानियोंके प्रति भी समताका भाव था। सभी यही समझती थीं कि श्रीकृष्ण मेरे ही हैं। महाभारत-युद्धके उपस्थित होनेपर दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही सहायता माँगने आते हैं और दोनोंका मनोरथ पूर्ण होता है। यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्णको ईश्वरका पूर्णावतार तथा साक्षात् परमेश्वर कहा गया है।

भगवान् श्रीकृष्णकी वाक्शक्ति भी कितनी प्रबल है, इसके कई उदाहरण मिलते हैं। भगवद्गीताकी घटना सुप्रसिद्ध है कि युद्ध छोड़कर भागते हुए दृढ़प्रतिज्ञ हठी वीर अर्जुनको आपने स्वधर्मका बोध कराया। आपने गोपोंसे इन्द्रपूजा छुड़वाकर गोवर्धन-पूजा करवा दी। आपके बल और पौरुषके तो बाल्यकालसे ही प्रमाण मिलते हैं। क्रियाशीलता भी आपकी अद्भुत है। आज द्वारकामें तो कल इन्द्रप्रस्थमें, परसों युद्धमें चढ़ाई है तो अगले दिन तीर्थयात्रा। हजारों रानियोंके साथ पूर्ण गार्हस्थ्य धर्मका निर्वाह, यादव-राज्यका सब प्रबन्धकर भूमण्डलमें उसे आदर्श प्रतिष्ठित राज्य बनाना, पाण्डवोंके प्रत्येक कार्यमें सहायक और सलाहकाररूपमें उपस्थित

रहना, महाशत्रुओंसे द्वारकाकी रक्षा करना, अल्प समयमें द्वारकासे विदर्भदेश पहुँच रुक्मिणीका मनोरथ पूर्ण करना आदि उनकी क्रियाशीलताके अद्भुत उदाहरण हैं।

आपके साहस एवं उत्साहके भी अनेकों उदाहरण हैं। शिशुपाल-जैसे वीर राजाके मित्रों और सेना-सहित उपस्थित होनेका समाचार सुनकर भी अकेले कुण्डिनपुर चले जाना, परम शत्रु जरासन्धसे लड़नेको केवल भीम और अर्जुनको साथ ले बिना सेना जा पहुँचना, भरी सभामें कूदकर कंस-जैसे राजाके केश पकड़ उसे गिरा देना, मणि-चोरीका कलंक लगनेपर सबके मना करते रहनेपर भी अकेले अगम्य गुफामें चले जाना-जैसे अनेकों हिम्मतके उदाहरण श्रीकृष्णके जीवनमें दिखायी देते हैं।

मनोहरता एवं मनमोहकता तो आपकी प्रसिद्ध है ही। आपका नाम ही चितचोर है। शत्रु भी लड़नेको सामने आकर आपकी ओर आकृष्ट होनेपर अपनी शत्रुता भूल जाते थे। क्रूरवीर कालयवनको भी अनुताप हुआ कि ऐसे सुन्दर नवयुवकसे लड़ना पड़ेगा।

आपकी सबसे उत्कृष्ट कला आनन्द है। इसका पूर्ण विकास अन्य अवतारोंमें नहीं देखा जाता। भगवान् कृष्णमें आनन्दके सब रूपोंका पूर्ण विकास है। आपके जीवनमें ऐसा अवसर दिखायी नहीं देता, जब आप किसी चिन्तामें निमग्न हों। भय, चिन्ता, शोकको कभी पास फटकने नहीं दिया। जो भी झंझट सामने आये सबको खेल-तमाशोंमें ही आपने सुलझाया। आनन्दकी पूर्ण अभिव्यक्ति अगर किसी एक चरित्रमें पायी जाती है, तो वह चरित्र भगवान् श्रीकृष्णका है।

भगवान् श्रीकृष्णको पूर्णावतार कहा गया, कारण वे अपने धर्मसे कभी च्युत नहीं हुए। इसलिये उन्हें अच्युत कहा गया। सभी प्रकारके ऐशो-आराममें रहते हुए भी उनमें निर्लिप्त रहते हैं। सब कुछ भोगते हुए भी क्षणमात्रमें सबको छोड़कर कभी याद न रखनेकी शक्ति रखते हैं। जिसने सब प्रकारके लौकिक सुख भोगते हुए भी अपना पूर्ण कर्तव्य पालन किया हो, जो संसारमें लिप्त दीखता हुआ भी आत्मविद्याका पारंगत हो, जो जगत्को अन्याय हटानेकी चुनौती देता हुआ भी भय और चिन्तासे दूर रहे, निःसन्देह ये परमानन्द पूर्णावतारके ही लक्षण हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण परम प्रेमास्पद हैं। आनन्द और प्रेम अलग-अलग नहीं हो सकते। जब होंगे साथ-साथ होंगे। जो प्रेम करेगा तो उसका आनन्दमय होना स्वाभाविक है। व्रजके खग, मृग, वृक्ष, लता भी वंशीकी ध्वनिसे प्रेमोन्मत्त हो जाते थे। गोप, गोपांगनाएँ अपने कुटुम्बियोंसे प्रेम छोड़कर उनसे प्रेम करते थे। किसी जातिका कोई गायक नहीं होगा, जिसने श्रीकृष्णके पद न गाये हों। चित्रकलावाले भी अवश्य श्रीकृष्णके चित्र बनाकर आनन्दका अनुभव करते हैं। मूर्ति बनानेवाला शिल्पकार भी श्रीकृष्णकी मूर्ति अवश्य बनायेगा। भक्त लोग अपना सर्वस्व समझकर, धार्मिक लोग अपना धर्मरक्षक समझकर, दार्शनिक गीताके प्रवक्ता समझकर, राजनीतिज्ञ नीतिके पारंगत समझकर, गोप गोपालक समझकर समय-समयपर आपका स्मरण करते हैं। भारतके ही नहीं, अन्यान्य देशोंके लोग भी श्रीकृष्ण-प्रेमसे प्रभावित हुए हैं। मुसलमानोंमें रसखान, रहीम खानखाना, नवाज, ताजबेगम आदि तो प्रसिद्ध हैं ही, जिन्होंने श्रीकृष्णके स्तुतिपरक गीत लिखे एवं गाये हैं। ईसाइयोंमें भी वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीट्स, बॉयरन और वाल्टर स्कॉट-जैसे प्रमुख कवि श्रीकृष्ण और उनकी गीतासे गहरे रूपमें प्रभावित रहे। सिक्खोंके दशम गुरु गुरु गोविन्दसिंहजीने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका सुन्दर वर्णन किया है।

चूँकि सभी कलाओंका विकास श्रीकृष्णके चरित्रमें पूर्ण रूपसे अभिव्यक्त होता है, अतः निःसन्देह श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं।

बोधकथा—

परमेश्वर हमारे अन्दर है

वृन्दावनमें एक वृद्ध महिला रहती थीं। उनका नाम था माया। वे एक छोटी-सी कुटियामें अकेले रहती थीं और भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्त थीं। वे पूर्णरूपसे उनकी भक्तिके लिये समर्पित थीं। एक छोटी-सी बगियामें उनकी कुटिया थी। उस बगियामें तुलसीके पवित्र पौधे लगे हुए थे। वे नित्य तुलसीके दो दल (पत्तियाँ) तोड़कर एक छोटी-सी चौकीपर भगवान्के नामसे समर्पित करतीं। जिस समय वे भगवान्की पूजा करतीं, भगवान् प्रकट हो जाते। वे लकड़ीकी चौकीपर बैठ जाते और तुलसीदल उनके श्रीचरणोंमें रखे दिखायी देते। मुसकराते हुए वे मायासे पूछते-"माया! तुम्हें क्या चाहिये?" वे रोने लगतीं और प्रसन्नतासे चिल्ला पड़तीं—'हे मेरे स्वामी! आपको छोड़कर मुझे और क्या चाहिये। कृपाकर आप मुझे कभी न छोड़ें। बस, मुझे जीवनमें इतना ही चाहिये।'

भगवान्के ध्यानमें वे अपनी सुध-बुध खो देतीं तथा अपनी आँखें बन्द कर लेतीं और भगवान्का नाम-कीर्तन करती रहतीं। ऐसी दशामें भगवान् प्रकट होते और जब माया आँखें खोलतीं, तब वे गायब हो जाते। किंतु जानेसे पहले भगवान् अपना कर्तव्य-पालन करना न भूलते। वे मायाके मिट्टीके पात्रोंको दाल-भात, दही-दूधसे भर देते। वृद्ध माया इस भोजनको पुनः श्रीकृष्णके लिये समर्पित करतीं और फिर दोपहर बाद इस दिव्य भोजनको प्रसादरूपमें स्वयं ग्रहण करतीं। उनके पड़ोसी उसे एक रहस्य मानते थे। वे आपसमें कहते थे कि माया न तो कोई काम-धाम करती है, न भीख माँगती है और न ही किसीसे उधार माँगती है, फिर भी वह जिन्दा है। यह जाननेके लिये कि वृद्धाका रहस्य क्या है, उसके कुछ जिज्ञासु पड़ोसियोंने वृद्धाकी कुटियामें झाँककर देखा। वहाँ जो चमत्कार देखा, उससे वे अचम्भेमें आ गये। उन्होंने देखा कि माया तो ध्यानमें आँखें बन्द किये हुए है और उधर भगवान् श्रीकृष्ण आसनपर बैठे हुए हैं। उधर भगवान् भी स्थिति समझ रहे थे, वे उन पड़ोसियोंसे कुछ बोले भी थे। इसपर भी पड़ोसियोंकी जिज्ञासा अभी शान्त नहीं हुई थी। उन्होंने उस वृद्धाके साथ एक कुटिल चाल चलनेकी कोशिश की। जब माया अपनी बगियामें तुलसीके पौधोंमें पानी डाल रही थी, उस समय इन लोगोंने उसके बर्तन चुरा लिये, बर्तनोंको तोड़ डाला तथा भगवान्की चौकीको यमुनाजीमें फेंक दिया।

दोपहर बाद, माया अपनी नित्यपूजा करनेके लिये आयी। पर यह क्या, मायाने देखा कि न बर्तन हैं, न भोजन है और इन सबके अतिरिक्त वेदी खाली पड़ी है, चौकी भी नहीं है। वह जोरसे भगवान्को पुकारकर कहने लगी—'प्रभो! कृष्ण! मेरे स्वामी! आप मुझे भोजनसे वंचित कर सकते हैं, किंतु मेरी कुटियामें आपका जो स्थान है, उससे वंचित न करिये।' जब कोई असहाय व्यक्ति भगवान्का स्मरण करता है, तब स्वर्गके देवता भी चुप नहीं रहते। इसी समय मायाने अपने घरके बाहर कुछ खड़खड़ाहटकी आवाज सुनी। वह धीरेसे बाहर आयी। उसने देखा कि बाहर पड़ोसियोंकी भीड़ एकत्रित है, वे एक चमत्कार देख रहे हैं। कुटीके बाहर हजारों बर्तन रखे हुए हैं, बर्तनोंमें खानेकी वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। मायाने पलकें बन्दकर आँसू रोके, पर कोई बर्तन स्पर्श नहीं किया। उसके साथ जिन लोगोंने बुरा किया, उनके प्रति उसके मनमें कोई क्रोध नहीं था, बदलेकी भावना नहीं थी। उसने श्रीकृष्णको पुकारते हुए कहा—'कृष्ण, मैंने आपसे भोजन नहीं माँगा था। यह निर्बल शरीर भोजनपर जीवित नहीं है। यह तो आपकी कृपापर जीवित है। आप मेरे जीवनमें पुनः आ जाइये।' माया जोर-जोरसे भगवान्को पुकार लगाती रही, साथमें निष्ठुर पड़ोसी, जो अब पश्चात्तापकी मुद्रामें थे, वे भगवान्को पुकार लगाते रहे। थोड़ी देरमें वे देखते क्या हैं कि मायाके हृदयमें भगवान् मुसकराते हुए विराजमान हैं। पड़ोसी भगवान्के सामने नतमस्तक हो गये। वे पश्चात्ताप करते हुए वृद्धासे क्षमा माँगने लगे। वे

बोले—'माँ! हमलोगोंने आपके साथ जो दुर्व्यवहार किया है, उसके लिये आप हमें क्षमा करें। आप ही भगवान्‌की वेदी हैं। आपमें ही भगवान् विराजमान हैं।'

मायाने झुककर देखा तो उसे मुसकराते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उसकी छातीके मध्यमें दिखायी पड़े। उसने भीड़की ओर मुड़कर देखा और बोली—'आप लोग हमारे गुरु हैं। मुझे आप लोगोंके प्रति आभार व्यक्त करना चाहिये। आप लोगोंके कारण आज मैं अपने अज्ञानसे मुक्त हुई। आजतक मैं प्रभुको अपनेसे बाहर समझती रही और उन्हें बाहर ही ढूँढ़ती रही। अब मैं अपने अन्दर ही उन्हें पा रही हूँ।' उधर भगवान् श्रीकृष्णने भी भीड़को सम्बोधित करते हुए कहा—'जिन लोगोंके मनमें ईश्वरके प्रति विश्वास नहीं, उन्हें अब यह जान लेना चाहिये कि मेरे किसी भी भक्तको कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। ऊपरसे देखनेमें ऐसा लगता है कि हमारे भक्त कष्टोंमें हैं, परंतु जितना वे कष्ट उठाते हैं, उतना ही वे हमारे निकट आते हैं। मैं अन्नदाता हूँ, पालनकर्ता हूँ। तुम्हें यह जान लेना चाहिये कि जिस तरह मेरी इस आराधिका मायाने मुझे बाँध रखा था, उसी प्रकार तुम भी हमें अपनी भक्तिसे बाँध सकते हो। जहाँ ईश्वरमें भक्ति होती है, वहाँ अन्यत्र सब वस्तुएँ अपने-आप सुलभ हो जाती हैं।'

हम भी अपने अन्दर परमेश्वरको ढूँढ़नेका प्रयास करें, हमारा जीवन परमेश्वरकी भक्तिसे ओतप्रोत रहे, यही हमारी परमेश्वरसे प्रार्थना है।

कायाकल्प एवं मनःकल्पका आधार

मनुष्य मूलमें शुद्ध शाकाहारी है। शाकाहारके अन्तर्गत शाक (सब्जी), फल, जूस, सूप (अनफायर्ड अर्थात् बिना आगद्वारा तैयार किया हुआ), भीगे हुए मेवे (ड्राई फ्रूट्स) एवं अंकुरित (स्प्राउटेड) अनाज जैसे—गेहूँ, चना, मूँग, मूँगफली आदि आते हैं, किंतु अज्ञानतावश अन्नाहारीको भी लोग शाकाहारी बोलने लगे हैं। अन्नाहारी अर्थात् रोटी, दाल, चावल, आगकी पकी सब्जियाँ, खीर, हलुआ, मिठाइयाँ, पकौड़ी आदिको शाकाहारीके नामसे खा-खाकर लोग अपने स्वास्थ्यका सत्यानाश कर रहे हैं। फिर बीमार होनेपर षट्कर्म, शंख-प्रक्षालन एवं प्राकृतिक चिकित्साद्वारा शोधन न करके भविष्यकी दुष्परिणामी—केमिकल दवाएँ खा-खाकर हेपेटाइटिस, कैंसर, गुर्दे फेल्योर आदि घातक रोगोंका शिकार होकर अकाल मृत्युके गालमें तो पहुँच ही जाते हैं। अपने या अपनोंका धर्म या अधर्मसे अर्जित धन भी नष्ट करवा देते हैं।

शाकाहारी होनेके बाद भी निम्न नियम न भूलें, अन्यथा बीमारियोंसे बच नहीं पायेंगे—

१-भूखाहारी—**खरी भूखमें ही खाना खायें। कम भूखमें भी न खायें।**

२-चबाहारी—**खूब चबा-चबाकर खायें। पेय (लिक्विड) भी धीरे-धीरे पियें।**

३-मिताहारी—**सदा भूखसे कम खायें। भरपेट न खायें। ठूँस-ठूँसकर न खायें।**

४-फुजलाहरी—**भोजनमें सलाद या फुजला अवश्य रखें।**

५-स्वच्छाहारी—**खूब अच्छी प्रकारसे हाथ धोकर खाना खायें।**

६-पवित्राहारी—**स्थानको पवित्र करके खायें।**

७-वितरणाहारी—**भोजनका चौथाई भाग चिड़िया आदिको निकालें।**

८-जलाहारी—**गर्मियोंमें दिनमें ४-५ लीटर एवं सर्दियोंमें ३-४ लीटर पानी पीयें।**

९-सुखाहारी—**जो भी, जैसा भी भोजन हो, ईश्वरको धन्यवाद करके खुशी-खुशी खायें।**

१०-प्रशंसाहारी—**जिसने भोजन बनाया हो, उसे धन्यवाद देना न भूलें।**

११-अदुर्व्यसनाहारी—**बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, पान-मसाला, अफीम, शराब, गाँजा, ड्रग्स आदि स्वास्थ्यनाशक दुर्व्यसनोंसे सदा दूर रहें।** [योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द']

जीवनमें सफलताकी कुंजी

(प्रो० श्रीहंसराजजी अग्रवाल, एम० ए०, पी० ई० एस०)

आजकल यह प्रथा प्रचलित है कि विद्यार्थी जब बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है, तब उसे उपाधि प्रदान की जाती है। उपाधि-प्रदानके समारोहपर दीक्षान्त-भाषणके लिये किसी महान् शिक्षा-विशारदको आमन्त्रित किया जाता है और वह महापुरुष दीक्षान्त-उपदेशमें विद्यार्थियोंकी जीवन-यात्राके लिये कोई-न-कोई उपदेश दिया करता है। ऐसी ही प्रणाली प्राचीनकालमें भी प्रचलित थी। उपनिषद्-कालमें विद्याप्राप्तिके अनन्तर शिष्य गुरुसे अन्तिम उपदेशके लिये जब प्रार्थना करता है तब गुरु जो शिक्षा उसे प्रदान करता है, उसमें एक वाक्य इस प्रकार है—'**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**' अर्थात् 'स्वाध्यायसे कभी प्रमाद मत करना।'

अनेक युवक-युवतियाँ इस पंक्तिको पढ़कर यह तात्पर्य लगा लेते हैं कि किसी भी विषयकी पुस्तकोंका अध्ययन स्वाध्याय है। यहाँतक कि विदेशी भाषाओंके अश्लील उपन्यासोंके अध्ययनको भी वे स्वाध्याय समझ लेते हैं। इस प्रकार करनेपर जीवनमें सफलताके स्थानपर जब असफलता मिलती है, तब वे इस उपदेशको निरर्थक समझ लेते हैं। प्रायः यह सबके अनुभवकी बात है कि विदेशी भाषाओंके सौन्दर्य-वर्णनको पढ़कर मन चंचल हो जाता है, अतः इसे हम स्वाध्याय कभी नहीं कह सकते। वाल्मीकि और तुलसीने भी स्थान-स्थानपर सौन्दर्य-वर्णन किया है; पर उसे पढ़कर हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि रामसे बढ़कर सुन्दर संसारमें कोई पुरुष नहीं और सीतासे अधिक संसारमें कोई सुन्दरी नहीं। परंतु इससे हमारा मन चंचल नहीं होता। हमारी भावना सीताके प्रति जगदम्बा और जगज्जननीकी होती है। हमारा मन श्रद्धा और भक्तिसे उनके चरणोंमें झुक जाता है।

स्वाध्याय जीवनमें सफलताकी अमोघ कुंजी है। 'स्व' का तात्पर्य है 'अपना-आप' अर्थात् आत्मा। आत्माके अध्ययनसे अथवा आत्मनिरीक्षणसे या आत्मज्ञानसे जो साहित्य सम्बन्ध रखता है, उसका पढ़ना, उसपर मनन करना तथा उसपर आचरण करना ही स्वाध्याय है। जीवनमें सफलताके लिये यह नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार हमारे शरीरको बलवान् बनानेके लिये भोजनकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मन और बुद्धिको प्रखर करनेके लिये तथा आत्माको सबल बनानेके लिये स्वाध्यायकी परम आवश्यकता है। शास्त्र बतलाता है और अनुभवसे हम नित्यप्रति देखते हैं कि शरीरकी अपेक्षा मन सूक्ष्म है, मनकी अपेक्षा बुद्धि और बुद्धिकी अपेक्षा आत्मा। जो वस्तु जितनी अधिक सूक्ष्म होती है, उतनी ही उसकी व्यापकता और महत्ता अधिक होती है। आजकलके युगमें प्रायः हमारी यही धारणा बन गयी है कि शरीरको हृष्टपुष्ट बनाना ही हमारा मुख्य ध्येय है। मन कितना ही चंचल क्यों न हो जाय तथा बुद्धि कितनी भी कलुषित क्यों न हो जाय, इसकी हमें परवा नहीं। जिस भारतभूमिमें मानवका ध्येय आत्मज्ञान होता था और शारीरिक तप करके भी मनुष्य प्रभुकी खोजमें लीन रहता था, आज उसी भारतकी पुण्यभूमिमें हमारे युवकोंका ध्येय बन गया है—हाय रोटी, हाय कपड़ा, हाय मकान, हाय भोग। रोटी, कपड़ा और मकान तथा भोग हमारे शारीरिक निर्वाहके लिये आवश्यक हैं। इनकी प्राप्तिका सत्प्रयास अवश्य होना ही चाहिये, परंतु सदा यह ध्यान रहना चाहिये कि यह हमारा साधन है, साध्य नहीं। पशु और मानवका भेद करते हुए शास्त्रने यही बतलाया है कि पशुको आत्मज्ञानकी परवा नहीं होती और मानवको होती है। यदि मानव आत्मज्ञानकी खोजमें प्रयास नहीं करता तो वह पशुके ही समान है।

स्वाध्यायकी महत्ताको महात्मा गांधीने समझा था। स्वाध्यायशील व्यक्तिकी आत्मा कितनी बलवान् हो जाती है, इसका उनके जीवनसे प्रचुर प्रमाण मिलता है। यद्यपि उनका शरीर दुर्बल था तो भी उनकी आत्मा समूचे अंग्रेजी साम्राज्यका अकेले मुकाबला कर सकती थी। एक ओर अंग्रेजी सरकारकी सारी भौतिक शक्ति—तोपें, बंदूकें, फाँसी और जेल तथा दूसरी ओर महात्मा गांधीकी स्वाध्यायशील पवित्र आत्मा। किसकी जीत हुई? इतिहास बताता है कि जिस अंग्रेजी साम्राज्यपर कभी सूर्य अस्त न होता था, वह १९४७ में भारतमें

समाप्त हो गया। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसको स्वाध्यायशील व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

जब हम स्वाध्यायकी महत्ताको समझ लेते हैं, तब किसी समय हमारे शरीरको अन्न न भी मिले तो हमें उसकी चिन्ता नहीं होती; परंतु किसी दिन स्वाध्यायको समय न मिले तो आत्मा इस प्रकार तड़पती है, जैसे जलके बिना मछली। साधककी यह अवस्था एकदम नहीं हो जाती। कुछ साधना करनी पड़ती है, कुछ अभ्यास करना पड़ता है और फिर हमें जीवनके उद्देश्यमें पूरी सफलता मिलती है।

'प्रमाद न कर'—इसका केवल यही तात्पर्य नहीं कि 'आलस्य न कर'। प्रमादका वास्तविक अर्थ है उचित कार्योंको न करना और अनुचित कार्योंको करना। समय अमूल्य है, धनकी अपेक्षा समयका मूल्य कई गुना अधिक है। गया हुआ धन पुन: प्राप्त हो सकता है; परंतु गया हुआ समय लौटकर नहीं आता। समय थोड़ा है, कार्य अधिक है। अत: हमें यह विशेष सावधानी रखनी चाहिये कि हम समयको व्यर्थ चेष्टाओंमें न खोयें। जीवनमें हमारा कोई लक्ष्य होना चाहिये। अपने लक्ष्यको निर्धारित करके हम अपना कार्यक्रम इस प्रकार बनायें कि हमारी सभी चेष्टाएँ उस लक्ष्यमें सहायता करनेवाली हों। जो चेष्टा उस लक्ष्यमें सहायक न हो सकती हो, उसको प्रमाद समझकर हम तत्काल छोड़ दें।

मानवका यह स्वभाव है कि वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरेके दोषोंको देखता है। इससे आत्मा शनै:-शनै: पतित हो जाता है। स्वाध्यायशील व्यक्ति जब आत्माका निरीक्षण करता है तब वह अपने अवगुणोंकी ओर ध्यान देता है और उनपर चिन्तन करके उनको दूर करनेका प्रयास करता है। वह दूसरोंके गुणोंको देखता है और उनको अपने अन्दर धारण करनेकी चेष्टा करता है। अपने अवगुणोंको और दूसरेके गुणोंको बढ़ा-चढ़ाकर देखना स्वाध्यायशील व्यक्तिका स्वभाव बन जाता है। वास्तवमें स्वाध्याय जीवनमें सफलताकी अमोघ कुंजी है।

बोधकथा—

संयम ही स्वास्थ्यकी कुंजी है

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

एक धनी व्यक्ति अपच, अनिद्रा तथा मानसिक तनाव-जैसी बीमारियोंका शिकार बन गया। उसने बड़े-बड़े डॉक्टरोंसे इलाज कराया, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन वह आयुर्वेदके आचार्य राजवैद्य शारंगधरके पास पहुँचा। उसने उन्हें विस्तारसे बताया कि वह रातभर जागने तथा पेटदर्दसे कराहनेको मजबूर है।

राजवैद्यने उसकी नब्ज देखी, पेटको दबाया तथा बताया कि शारीरिक परिश्रम न करने तथा मांस-मदिराके सेवनके कारण वह बीमार हुआ है। व्यायाम करने तथा संयमका जीवन बितानेका संकल्प लेनेपर ही मैं दवा दे सकता हूँ। औषधि संयमका पालन करनेवालेपर ही प्रभाव दिखाती है।

यह सुनकर वह बोला—'यदि मैं अपने स्वादकी वस्तुएँ खाना-पीना छोड़ दूँगा, तो फिर जीनेका क्या अर्थ है? आदमी खाने-पीने, भोग करनेके लिये ही तो पैदा होता है। मुझे ऐसी दवा देनेकी कृपा करें, जो गरिष्ठ भोजनको पचा सके। मुझे ठीक ढंगसे नींद आने लगे। मैं आनन्दपूर्वक जीवनका रस लेनेमें समर्थ हो जाऊँ।'

वैद्यराजने जवाब दिया—'मैं उन लोगोंका इलाज करता हूँ, जो परहेज और संयमका पालन कर सकते हैं। हमारे धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि आदमीको जीनेके लिये खाना चाहिये न कि खानेके लिये जीना चाहिये। उसी व्यक्तिका जीवन सार्थक माना गया है, जो सत्कार्योंमें प्रवृत्त रहता है। सत्कार्य करनेवाले, संयमसे रहनेवाले न कभी बीमार पड़ते हैं, न उनकी असामयिक मृत्यु होती है।'

वैद्यजीके इन शब्दोंने रोगीका जीवन बदल दिया। संयमके पालनसे वह कुछ ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो गया।

श्रीकृष्णलीला-दर्शन—

सखा-सत्कार

कन्हाईकी वर्षगाँठ है। इस जन्मदिनका अधिकांश संस्कार पूर्ण हो चुका है। महर्षि शाण्डिल्य विप्रवर्गके साथ पूजन-यज्ञादि सम्पन्न कराके, सत्कृत होकर जा चुके हैं। गोप एवं गोपियोंने अपने उपहार व्रजनवयुवराजको दे दिये हैं। अब सखाओंकी बारी है।

कन्हाईके सखा भी उपहार देंगे; किंतु ये गोपकुमार तो अपने अनुरूप ही उपहार देनेवाले हैं। रत्नाभरण, मणियाँ, बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकारके खिलौने तो बड़े गोप, गोपियाँ—दूरस्थ गोष्ठोंके गोप भी लाते हैं; किंतु गोपकुमारोंका उपहार इन सबसे भिन्न है।

'कनू! मैं भी तुझे टीका लगाऊँगा।' यह आया भद्र! यह श्यामके जन्मदिनपर सदा ऐसे ही आता है—'मेरे समीप तो कुछ है नहीं, तेरी ही कामदाके गोबरका टीका लगा दूँ तुझे?'

'सच! लगा!' अब यह नन्दनन्दन तो मानो हर्षसे विभोर हो उठा है। इसे लगता है कि इतनी महत्त्वपूर्ण बात महर्षि शाण्डिल्यतकको स्मरण नहीं आयी और उसका भद्र कितना बुद्धिमान् है। भला, गोपकुमारका तिलक गोमयके बिना कैसे सम्पूर्ण हो सकता है?

आज कन्हाई सिरसे चरणोंतक नवीन रत्नाभरणोंसे सज्जित है। अलकोंमें अनेक रंगोंके रत्नमणियोंकी माला है। रत्न-खचित नन्हा-सा मुकुट है। भालपर केसरकी खौरके मध्य महर्षिके द्वारा लगाया कुंकुम-तिलक है, जिसपर अक्षत लगे हैं। भद्रने अक्षतोंके नीचे ठीक भ्रूमध्यमें अपनी अनामिकासे एक छोटा बिन्दु गोबरका लगा दिया।

'बाबा! यह सब भूल ही गये थे।' कृष्ण अब बाबा, ताऊ, चाचा और मैया—सबको दौड़ा-दौड़ा दिखा रहा है—भद्रने लगाया है—मेरे भद्रने।

अब यह क्रम तो चल पड़ा। तोक कहींसे एक तिरंगी गुंजा लाया है—श्वेत, कृष्ण और अरुण तीनों रंग समान हैं इसमें तथा कन्हाई उसे करपर रखे सबको दिखलाता घूम रहा है। इसके नेत्र, इसका उल्लासभरा स्वर कहता है—'ऐसी अद्भुत वस्तु है कहीं किसीके समीप? कोई रत्न इसकी तुलना करनेयोग्य है?'

कोई नन्हा मयूरपिच्छ लाया है और कोई तीन-चार छोटे किसलय। सुबल कहींसे पाँच रंगोंसे अंकित श्वेत पुण्डरीक पा गया है। सब फल, पुष्प, पत्ते या पिच्छ ही लाये हैं, किंतु कन्हाई तो एक-एक सखाका उपहार पाकर ऐसा उल्लसित होता है, ऐसा उछलता और सबको दिखाने दौड़ता है, जैसे त्रिभुवनका दुर्लभतम रत्न इसे मिल गया हो।

कृष्णचन्द्र इतना उल्लसित तो किसी भी गोप या गोपीके उपहारको पाकर नहीं हुआ। सब गोप, गोपियाँ, दूरस्थ गोष्ठोंसे आये गोपनायक महीनोंसे इसी अन्वेषणमें लगे थे कि नन्दनन्दनको क्या दें इस दिन, जिसे पाकर श्याम प्रसन्न हो; किंतु यह नील-सुन्दर जैसे नाचता, कूदता, उल्लासभरा दिखलाता फिर रहा है अपने सखाओंका उपहार—कोई अमूल्य मणि या वस्त्र कहाँ इसका सहस्रांश भी हर्ष इसमें ला सका।

'लाल! आज मित्रोंका सत्कार करते हैं।' मैयाने बड़े स्नेहसे कहा—'तुम अपने सखाओंको भी तो उपहार दो!'

'हाँ!' कन्हाई प्रसन्न, दौड़ आया उस राशिके समीप जो मैयाने सजा रखी है। इस बार मैयाने बाबाको बहुत सावधान किया था कि उनका नीलमणि अपने सखाओंको ऐसी-वैसी वस्तु नहीं देना चाहेगा। बाबाने कई महीने लगाये हैं इन वस्तुओंके चयनमें। बहुत प्रयत्न करके दूर-दूरसे मँगाया है।

मैया ठिठकी खड़ी रह गयी। बाबा भी स्तब्ध देखते रह गये। इस बार भी वही हुआ जो पिछली वर्षगाँठोंको होता आया है। कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। कुछ भी तो कृष्णको ऐसा नहीं लगता है, जो वह अपने किसी सखाको दे सके।

कन्हाई कोई चमकता मणि, कोई रत्नाभरण, कोई वस्त्र उठाता है, देखता है और फेंक देता है। किसी

सखाके दिये किसलय, गुंजा, पिच्छ, फलको देखता है और हाथकी वस्तु इसे तुच्छ लगती है। अनेक बार भालके गोमय-बिन्दुतक कर ले गया और हाथकी वस्तु उपेक्षासे फेंक दी इसने।

अबतक हर्षसे उछलता, खिलखिलाता, दौड़ता श्यामसुन्दर गम्भीर हो गया है। कुछ खिन्न हो उठता है। विशाल अंजन-रंजित कमललोचन भर आये हैं। अग्रजकी ओर देखा इसने 'दादा'!

प्रत्येक वर्षगाँठपर यही होता है। दाऊ ही अपने अनुजका समाधान करते हैं—'कनूँ! अपने सखाको देकर सन्तुष्ट हो सके, ऐसी कोई वस्तु कैसे हो सकती है ?'

सचमुच कोई वस्तु त्रिभुवनमें कैसे हो सकती है, जो सखाको देनेयोग्य प्रतीत हो सके कन्हाईको। तब ?

एक क्षण सिर झुकाकर सोचता है और फेंके-बिखरे रत्नाभरणों, मणियों, वस्त्रोंके मध्यसे आगे कूद आता है, 'भद्र!' दोनों भुजाएँ गलेमें डालकर कन्हाई लिपट गया है। वाणी नहीं कह पाती; किंतु इसका रोम-रोम कहता है··· 'मैं तेरा! मैं तेरा!'

'तोक! सुबल! श्रीदाम! वरूथप! 'अब एक-एक सखाके कण्ठसे कन्हाई भुजाएँ फैलाकर लिपट रहा है। इसका अंग-अंग मानो पुकार रहा है—'मैं तेरा! मैं तेरा!' चल रहा है यह सखाओंका सत्कार!

अमृतोज्ज्वला गंगा

(प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)

भगीरथभूरितपसा या भुवं कथमपि समानीता।	भगीरथ के महातप से कथंचित् भूमि पर उतरीं।
मया दृग्भ्यां निपीता सैव सन्ततिवत्सला गंगा॥ १	दिखीं मुझको वही नयनों से सन्ततिवत्सला गंगा॥ १
दृषदि कुल्याप्रवाहा मालभूमौ सिन्धुविस्तारा।	शिलाओं में नहर सँकरी, खुले में सिन्धु सी विस्तृत।
विलक्षणशिल्परचनामादधाना चंचला गंगा॥ २	विलक्षण शिल्परचना सी विरचती, चंचला गंगा॥ २
गहनगिरिशृंखलोद्याने द्रुतं पक्षतिबलैर्यान्ती।	गहन-गिरिशृङ्खलाओं की बगीची में फुदकती सी।
मधुरमधुरं स्वनन्ती प्रेक्षिताऽसितकोकिला गंगा॥ ३	कुहकती सी दिखीं द्रुत-पंख कृष्णा कोकिला गंगा॥ ३
क्वचिन्मध्येप्रवाहं गिरिशिलाभी रुद्धजलवेगा।	कहीं रोकी गई मँझधार में पर्वत-शिलाओं से।
किरन्ती सीकरासारं मया दृष्टाऽमला गंगा॥ ४	दिखीं मुझको फुहारें सघन बिखराती कला गंगा॥ ४
धनुर्यष्टिच्छविं दधती निकामं शिखरिणां मूले।	कहीं वर्तुल महीधर से लिपटती धनुष सी टेढ़ी।
कपर्दाद् धूर्जटेः पतितेव भुवि चान्द्री कला गंगा॥ ५	गिरीं शिव की जटा से, दिखीं दुहरी विधुकला गंगा॥ ५
तरंगैर्भंगुरावर्तैर्भ्रमिव्रातैर्दधन्नादा ।	लहरियों और भँवरों से मचाती शोर उफनाती।
सहजतौर्यत्रिके संलक्ष्यते धृतमर्दला गंगा॥ ६	दिखीं संगीत में मुझको पखावज व्याकुला गंगा॥ ६
शिलाः निष्पिष्य बृहतीस्ताश्च करकाकारतां नीत्वा।	कहीं भारी शिला को पीस, बालू में बदलती सी।
युयुत्सुश्चण्डिकेवालोकिता वर्चस्वला गंगा॥ ७	रणाङ्गण में डटी चण्डी दिखीं वर्चस्वला गंगा॥ ७
क्वचिल्लीना क्वचित्पीना क्वचिद्दीनाऽद्रिरन्ध्रेषु।	कहीं तो संकटग्रस्ता कहीं मुक्ता, कहीं गुप्ता।
क्वचिन्नृत्यज्जला भङ्ग्या क्वचित्प्रसरज्जला गंगा॥ ८	लहरियों से कहीं पर नाचती, सागरजला गंगा॥ ८
सितिम्ना कम्बुकुन्देन्दूच्चयं स्तन्यञ्च लघयन्ती।	कुमुद-विधु-शंख को, पय को, धवलता से मलिन करती।
चुलुकचुलुकैर्मया पीता विमुक्त्यै शीतला गंगा॥ ९	बँधे इन चुल्लुओं से पी गईं अमृतोज्ज्वला गंगा॥ ९

तीर्थ-दर्शन—

महाकाललोकके पौराणिक महत्त्वका पुनर्जागरण

(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)

भारतमें स्थापित द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें भगवान् महाकालकी अमित महिमा है। उल्लेखनीय है कि शैव-परम्परामें काशी विश्वनाथ यदि सृष्टिके पालक हैं, तो अवन्तिकानाथ महाकाल संहारक हैं। उन्हें कालों-के-कालकी संज्ञा दी जाती है। वे मृत्युंजय हैं, अत: उनकी जय बोलने या दर्शन कर लेनेसे भक्त हमेशाके लिये मृत्युके भयसे मुक्त हो जाता है। विद्वानोंकी मान्यता है कि महाकाल अनादिकालसे प्राचीन अवन्ति महाजनपदकी राजधानी उज्जैनमें शिप्रा तटपर विराजे हैं। पुराणोंमें कहा गया है कि प्रलयकालमें जब न अग्नि थी, न वायु था, न आदित्य थे, न ज्योति थी, न अन्तरिक्ष था, न ही पर्वत, नदियाँ और सागर थे, तब भी लोकानुग्रहके कारण सब दिशाओंको देखते हुए अकेले महाकाल विराजमान थे। महाकालको काल-चक्रका प्रवर्तक कहा गया है—

'**कालचक्रप्रवर्तको महाकालः प्रतापनः**' कहकर उनकी वन्दना की गयी है। वराहपुराणमें इस बातको रेखांकित किया गया है—

'**नाभिदेशे महाकालस्तन्नाम्ना तत्र वै हरः।**' दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि नाभिदेशमें महाकाल नामसे शिव वहाँ विराजते हैं। खगोल-भूगोलकी बात करें तो देशान्तर और कर्क रेखाएँ जिस जगह एक-दूसरेको काटती हैं, वह जगह पृथ्वी एवं आकाशका केन्द्रबिन्दु है। पृथ्वीके नाभिस्थलको योग और तन्त्रमें मणिपूर-चक्रके नामसे जाना जाता है। महाकाल ज्योतिर्लिंग इसी बिन्दुपर स्थित है। इसी अद्भुत विशिष्टताके कारण महाकाल कालगणनाके अनादि केन्द्र हैं।

दक्षिणमुखी होनेसे तन्त्र और मणिपूरचक्रपर स्थिति होनेसे योगियोंकी भी महाकालमें अटल आस्था रही है। सदियोंसे महाकालकी कई रूपोंमें पूजा हो रही है, जैसे भूतभावन, नटराज, योगेश्वर, भूतनाथ, अवन्तिनाथ, राजाधिराज शिव। शिवमहापुराण, मत्स्यपुराण, स्कन्दपुराण आदिमें उल्लेख आता है कि दूषण नामक दैत्यने जब तीर्थक्षेत्र अवन्तिमें लोगोंको त्रास देना शुरू किया, तो भक्तोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर महादेव प्रकट हुए और उनकी क्रोधाग्निसे महापापी दूषण भस्म हो गया। इसके बाद कृपानिधान शंकरभगवान् महाकालवनमें विराज गये। वाल्मीकि रामायणमें अवन्तिका उल्लेख है, पर महाभारतमें श्रीमहाकालवन तथा कोटितीर्थ दोनोंका वर्णन मिलता है। सान्दीपनि-आश्रममें पढ़ने आये श्रीकृष्णद्वारा श्रीमहाकालकी पूजा करनेके सन्दर्भ भी पुराणोंमें मिलते हैं। इतिहासवेत्ता तो यह मानते हैं कि भगवान् बुद्धके समय अर्थात् आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व श्रीमहाकालका भव्य मन्दिर बन चुका था। उस समय चण्डप्रद्योत अवन्तिका शासक था। उस समय उज्जयिनीकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैली थी। संस्कृत साहित्यमें अनेक कवियों एवं नाटककारोंने श्रीमहाकालकी बहुत-सारी स्तुतियोंका गान किया है। संस्कृत रचनाओंमें श्रीमहाकालका कहीं शिव, कहीं शंकर, कही पशुपति, कहीं चण्डीश्वर नामसे स्तवन किया गया है। महाकवि कालिदासके साहित्यमें तो प्रचुर वर्णन मिलता है। रघुवंशके छठे सर्गमें कालिदास लिखते हैं कि चन्द्रमौलि श्रीमहाकाल-मन्दिरके आस-पास कृष्णपक्षमें भी चाँदनी रहती है; क्योंकि तब भी महाकालके मस्तकपर सजा चन्द्रमा चमकता है। मेघदूतमें महाकालकी भव्य प्रतिमाके वर्णनसे विद्वानोंद्वारा यह कल्पना की जाती है कि उज्जयिनीके संवत् प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्यके शासन-कालमें तो महाकालका गगनचुम्बी देवालय रहा होगा। महाकालका यह विशाल देवालय परमारकालतक रहा। आज भी महाकाल मन्दिरके निकट परमारकालीन २४ स्तम्भोंवाले कलात्मक द्वारके अवशेष हैं, जो प्राचीन महाकाल मन्दिरका प्रवेशद्वार था। इसकी भव्यतासे महाकाल मन्दिरकी भव्यताका अनुमान लगाया जा सकता है। महाकालका यह भव्य प्रासाद वर्ष १०७८-७९ ई०में महमूद

गजनवीके वंशजोंके मालवापर आक्रमण और तत्पश्चात् वर्ष १२३४-३५ में सुल्तान इल्तुतमिशके आक्रमणके दौरान विध्वंसका शिकार होकर नष्ट हो गया। इल्तुतमिश विक्रमादित्यकी पीतलकी तथा महाकालकी पाषाणकालीन प्राचीन प्रतिमाएँ लौटते समय दिल्लीसे ले गया था। इस बीच महाकाल-मन्दिरके पुनर्निर्माण और पूजा दोनोंकी परम्परा जारी रही। आक्रान्ताओंसे रक्षाके लिये महाकालके प्रच्छन्न लिंगोंकी भी पूजा होती रही। इसी कारण महाकाल नामसे अनेक मन्दिर बने। पुराविदोंके अनुसार महाकालका वर्तमान पाषाण ज्योतिर्लिंग एक हजार वर्ष प्राचीन है, जो मुख्य गर्भगृहमें विराजमान है। मन्दिरका विद्यमान स्थापत्य १८वीं सदीमें मराठाकालमें निर्मित है। यह तीन तलका आकर्षक देवालय है। गर्भगृहमें महाकाल, प्रथम तलपर ओंकारेश्वर तथा ऊपरी तलपर नागचन्द्रेश्वर विराजित हैं। महाशिवरात्रिपर महोत्सवका वर्णन हर्षवर्धन (६०६—६४६ ई०)-के राजकवि बाणभट्टने सुन्दर ढंगसे किया है। महाशिवरात्रिपर शिवनवरात्रके अन्तर्गत दस दिनी उत्सवमें महाशिवरात्रिको निशीथ-पूजन होता है तथा अगले दिन फूलोंका सेहरा चढ़ाकर महादेवको दूल्हा बनाया जाता है। नागपंचमीपर वर्षमें एक बार खोले जानेवाले नागचन्द्रेश्वर-मन्दिरमें दर्शनहेतु असंख्य लोग आते हैं। महाकाल-मन्दिरके निकट शक्तिपीठ हरसिद्धिका पुराणप्रसिद्ध मन्दिर है। कहते हैं, यहाँ सतीकी कोहनीका भाग गिरा था। महाकाल मौजी हैं और अनेक मोहक रूपमें दर्शन देते हैं। ग्रहण-कालको छोड़कर प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्तमें भस्म रमाकर बैठ जाते हैं और रात्रि ग्यारह बजेतक भक्तोंको दर्शन देकर निहाल करते हैं। नित-नूतन रूपोंमें उनका शृंगार किया जाता है।

महाकाल गणतन्त्रके प्रधान देवता हैं। राष्ट्रीय पर्वोंपर राष्ट्रीय प्रतीकोंको अपने अलंकरण बनाकर लोकरंजन करते हैं। वे नीलकण्ठ हैं। जलप्रिय हैं, अतः शिप्राके निकट रुद्रसागरके तटपर कोटितीर्थकी लहरोंको धन्य करते हुए ग्रीष्म-ऋतुमें इनके जलकी सहस्र धाराओंको जलछत्रकी भाँति मस्तकपर सजाते हैं।

वर्तमानमें महाकालका सर्वाधिक लोकप्रिय उत्सव प्रतिवर्ष सावन और भादो मासके सोमवारको निकलनेवाली सवारी है। लोकमान्यता प्रचलित है कि महाकाल संहारके देवता होकर भी भक्तोंके प्रति कृपालु हैं। वे आशुतोष शिव होकर कल्याण करते हैं तथा राजा होकर प्रजापालन एवं रक्षण करते हैं। वे राजाओंके भी राजा हैं और अवन्ति ही नहीं, समूचे भूलोकके अधिपति होकर राजाधिराज हैं। महाकालकी सवारी मराठा-कालकी देन है, जो किसी समय बहुत छोटे रूपमें थी, किंतु आज इसकी महिमा दक्षिणके ब्रह्मोत्सव तथा जगन्नाथपुरीकी रथयात्राके सदृश है।

महाकालस्तुतिः

नमोऽस्त्वनन्तरूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च॥
नान्तं देवा विजानन्ति यस्य तस्मै नमो नमः।
यं न वाचः प्रशंसन्ति नमस्तस्मै चिदात्मने॥
योगिनो यं हृदःकोशे प्रणिधानेन निश्चलाः।
ज्योतीरूपं प्रपश्यन्ति तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः॥
कालात्पराय कालाय स्वेच्छया पुरुषाय च।
गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे॥
विष्णवे सत्त्वरूपाय रजोरूपाय वेधसे।
तमोरूपाय रुद्राय स्थितिसर्गान्तकारिणे॥
नमो नमः स्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने।
क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने॥
नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः।
अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः॥
अचिन्त्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः।
नमस्ते भक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह॥
तव निःश्वसितं वेदास्तव वेदोऽखिलं जगत्।
विश्वभूतानि ते पादः शिरो द्यौः समवर्तत॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यस्तव प्रभो॥
त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं सर्वस्तुतिस्तव्य इह त्वमेव।
ईश त्वया वास्यमिदं हि सर्वं नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

गुमनाम साधु-सन्तोंकी भक्तिमय रचनाएँ

(श्रीउमेशप्रसाद सिंहजी)

सन्त रामशरणदास गृहत्यागी साधु थे। वे जनकपुरमें एक आश्रममें रहते थे। इनका जन्म सन् १८१७ ई०में अयोध्याके पास पण्डितपुरवा गाँवमें हुआ था। बीस वर्षकी आयुमें अयोध्यामें सुग्रीव टीलापर रहनेवाले महात्मा गरीबदासके शिष्य बन गये। कुछ वर्ष पश्चात् उन्हींसे शिक्षा और दीक्षा लेकर तीर्थाटन करने निकल गये। उन्होंने देशभरके प्रमुख धार्मिक स्थलोंकी यात्रा की। अन्तमें जनकपुर आये तो यहींके होकर रह गये। उन्होंने अनेक पदोंकी रचना की। उन पदोंको ऐसे गाते थे कि श्रोता भाव-विभोर हो जाते थे। उनमें एक उदाहरण है—

आये मिथिलेश के बगिया हो नृप युगल किशोर।
बाँधे बसंती पगिया हो दिनकर छबि छोर॥
मारे नजर के कोरवा हो सुधि हरि लीन्ही मोर।
चितवन बड़ी उर जोरवा हो हिया सालत मोर॥
गरबिच मोतिन के हरवा हो बुलकन चित चोर।
लसत वसंती के जामा हो दामिनि दुति थोर॥
रामशरण दोऊ छैलवा हो सखि श्यामल गौर।
लखि तेहि मोहनि मूरति हो सुधि बुधि भई भोर॥

भगवन्तदास पटना जिलाके रूपम गाँवके निवासी थे। पाँचसे बीस वर्षकी अवस्थातक अयोध्या तथा काशीमें रहकर संस्कृत तथा हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने रामचरितमानसका गहरा अध्ययन किया था। सन् १९२३ में गृहत्यागकर मठमें रहने लगे। वहाँ एक रामायण-सत्संगकी स्थापना की। उस मठमें आज भी प्रत्येक रविवारको प्रात: आठसे दस बजेतक नियमित रूपसे रामायण पाठ, हरिकथा या धार्मिक प्रवचन होते हैं। यह मठ पटना जिलेके झारखण्डी गाँवमें है। इन्होंने कुछ धार्मिक पुस्तकोंकी रचना की, उनमें रामलीला-संवाद प्रमुख हैं। इस पुस्तकके प्रथम अध्यायमें लिखा है—

चारि वेद को सार है रामायण सुख मूल।
बाँचत ही आनंद मन कटत घोर त्रैशूल॥
कटत घोर त्रैशूल हरत सब पातक भारी।
भक्ति होय उत्पन्न सदा श्रीअवध-बिहारी॥
लोक और परलोक में सदा होत विश्राम।
रामायन नित नेम से करूँ भगवंत ही गान॥

आजसे एक सौ पचास वर्ष पूर्व इस धरतीपर लक्ष्मीदास नामके महान् सन्त हो चुके हैं। उन्होंने लक्ष्मी सखी सम्प्रदाय बनाया। बालकालमें वे कबीरपन्थी थे। युवावस्थामें सरभंग-सम्प्रदायकी साधना-पद्धतिको अपना लिया। इसी बीच काशीके एक सन्त ज्ञानीदासका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। अनेक तीर्थोंके भ्रमणके पश्चात् लगभग चालीस वर्षकी आयुमें सारन जिलाके राजापट्टी स्टेशनके पास टेरुआ गाँवमें शालग्राम नदीके किनारे निर्जन स्थानपर कुटिया बना ली। अपने जीवनका शेष काल यहीं बिताये। इन्हीं वर्षोंमें अपने सम्प्रदायका विस्तार किया। इनकी अधिकांश रचनाएँ भोजपुरी भाषामें हैं—

बरिसेला गगन भिजेला मोरी सारी कैसे चलों दसम दुआर हे,
भेजि देहु ये पिया डोलिया कहरिया एगो सुंदर सबुजी ओहार हे।
आव-आव ए मोरा सखिया सहेलर मिलि-जुलि करना सिंगार हे।
अबकी के जावना फेरू नहीं आवना करि लेहु भेंट अंकवार हे।
हलबल दलबल चलेला कहँरवा जाई के लगेला दुआर हे।
देखलों में ए सखी सुंदर पियवा खोलिके बइठेला केंवार हे॥

सुमेरसिंह साहबजादे सिखोंके तीसरे गुरु अमरदासजीके वंशज थे। इसीलिये साहबजादे कहे जाते थे। इनका जन्म १८४७ ई० में उत्तर प्रदेशके आजमगढ़ जिलेके निजामाबाद कस्बेमें हुआ था। पाँच वर्षकी आयुमें ये अपने पिताजीके साथ पटना आये। यहाँ सिखोंके प्रसिद्ध तीर्थ हरमन्दिर साहब (पटना सिटी)-में रहने लगे। बादमें यहाँके महन्त बने। वे सिख धर्मको हिन्दू धर्मका ही एक अंग मानते थे। उनकी अधिकांश रचनाएँ व्रजभाषामें हैं—

सदना कसाई कौन सुकृत कमाई नाथ
मालन के मन के सुफेरे गनिका के कौन।

कौन तप साधना सो सेवरी ने तुष्ट कियो
सौचाचार कुबरी ने कियो कौन सुख मौन॥
त्यों हरि सुमेर जाप जप्यो कौन अजामेल
गज को उबारयो बार बार कवि भाख्यो तौन।
एते तुम तारे सुनो साहब हमारे राम
मेरी बार बिरद बिचारे कौन गहि मौन॥

शंकर चौबे रसिक-सम्प्रदायके भक्त थे। इनका जन्म १७८५ ई०में हुआ था। बचपनमें ही पिताजीके स्वर्गवासके पश्चात् आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो जानेके कारण माताजीने कुछ गायें पाल लीं। शंकर चौबे गायोंकी दिन-रात सेवा करते। कहते हैं कि एक बार गाय चराते समय उन्होंने शिकारी भेषमें भगवान् रामको घोड़ेपर आते देखा और कई दिनोंतक विरहसे व्याकुल उसी वनमें घूमते रहे। बाकी खोज-बीनके पश्चात् घर लाये गये। इसी समय आपकी माताजीका देहान्त हो गया। अयोध्यामें पीताम्बरदास नामक महात्माके शिष्य बन गये। १८ वर्षकी आयुमें तीर्थाटनपर निकले। कुछ वर्षों पश्चात् नैमिषारण्यमें एक महात्माके शिष्य बनकर उनके साथ आश्रममें रहने लगे। यहीं उन्होंने आठ खण्डोंमें राममाला नामक ग्रन्थकी रचना की। प्रत्येक खण्डमें १०८ भजन हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

वेद पुरान शास्त्र संगत से संत करहिं जप जाप।
से अक्षर हम प्रगटे गावत, भजत छुटे त्रय ताप॥
सब साधुन मो जाय-जाय हम, कहि सुनि सब मत लीन्ह।
तब निश्चै ठहराय गाय ये, राम भजन हम कीन्ह॥

वृद्धावस्था—अभिशाप नहीं, अपितु वरदान है

(श्रीराधेश्यामजी चाण्डक)

हमारे जीवनकालका चौथा चरण 'वृद्धावस्था'—शरीरकी वह जीर्णावस्था है, जब शरीर पूर्ण जर्जर एवं खोखला होकर बहुरूपेण दुर्बल होने लगता है।

जरावस्था समस्त रोगोंकी शरण-स्थली है, जहाँ नाना प्रकारके रोग शरीरको घेरे रहते हैं। खूनकी कमीसे मांसपेशियाँ शिथिल होने लगती हैं, रक्त-प्रवाहमें न्यूनताके कारण धमनियाँ कठोर होने लगती हैं, फलस्वरूप अस्थियोंमें पोलापन आने लगता है। दाँत कमजोर होकर गिरने लगते हैं, नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है और कानोंमें श्रवण-शक्तिका ह्रास हो जाता है। आमाशय एवं आँतोंमें पाचन-रसकी कमी आ जानेसे पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है।

मस्तिष्क-क्रियाएँ कमजोर होनेसे स्मरण-शक्ति, एकाग्रता, चिन्तन आदिमें गिरावट आती है तथा चिड़चिड़ापन एवं शारीरिक दुर्बलताकी वजहसे सिरदर्द एवं चक्कर आने लगता है। उक्त विचारोंसे वृद्धोंमें हीनभावना घर कर जाती है और वे अपने-आपको असहाय एवं दीन-हीन समझने लगते हैं। ऐसी परिस्थितिमें विशेषकर जब घरसे भी उपेक्षित होने लगें, तो स्थिति और भी दु:खदायी हो जाती है।

हीनभावना एवं विपरीत परिस्थितियोंका शिकार होकर वे हताश भी होने लगते हैं और एक ही विचार उनके मानस-पटलपर छा जाता है—***'उम्र ढली कि कद्र घटी।'*** उन्हें लगने लगता है कि घरमें मैं भारस्वरूप हूँ। न घरमें इज्जत है और न बाहर प्यार।

उम्रके इस पड़ावमें समकक्ष आयुवाले इष्टमित्र एवं परिजन भी एक-एक करके ईश्वरको प्यारे होने लगते हैं। निराश, हताश, व्यथित हाड़-मांसका यह पिंजरा भी अस्त-व्यस्त होकर कालान्तरमें अपनी अस्तावस्थाकी ओर अग्रसर होकर अपने अन्तिम छोरकी प्रतीक्षा करने लगता है।

इस विलक्षणावस्थामें घबरानेकी आवश्यकता नहीं, वरन् सोच बदलनेकी जरूरत है। कहते हैं न—***'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'***

बन्धुओ! ***'जिन्दगी जिन्दादिलीका नाम है, मुर्देदिल क्या खाक जिया करते हैं।'*** अपने-आपमें, अपने

विचारोंमें बदलाव लानेसे स्वत: सब कुछ ठीक होने लगता है।

अबतक, आजतक हम घरवालोंके लिये जिये, हमारे द्वारा किये गये सकल कर्म, क्रिया-कलाप अपनी आजीविकाहेतु एवं परिवारके लिये थे। समाज एवं जगत्के लिये भी हमने कुछ किया, मगर अब हमें अपने स्वयंके लिये जीना है, अपना भावी पथ प्रशस्त करना है। इसका एकमेव उपाय है—परमपिता परमात्मासे जुड़ना, उसमें मन लगाना। मेरा-तेरा मोहमायासे ऊपर उठकर निरन्तर प्रभुका वन्दन-चिन्तन करना और निर्मोही बन जाना है। ऐसा करनेसे हमें निश्चित रूपसे लगेगा कि बुढ़ापा बोझ नहीं, ओज है, जीवनकी स्वर्णिम साँझ है।

वस्तुत: वृद्धावस्था जीवन-कालका मीठा-रसीला परिपक्व फल है, जिसमें जीवनपर्यन्त अनुभव, ज्ञान एवं जीनेकी कला कूट-कूटकर भरी हुई है।

इस अवस्थामें हमारा तन भले ही कमजोर क्यों न हो, मगर मन मजबूत होना चाहिये। शरीरमें उत्साह, उमंग, जोश एवं नवीनतम कार्य सृजन करनेका हौसला बुलन्द होना चाहिये। मन सदैव सन्तोष एवं हर्षोल्लाससे लबालब छलछलाता हुआ रहना चाहिये। यही जीवन जीनेकी सच्ची कला है।

प्राय: सुनने-देखनेमें आता है—कई लोगोंको यह कहते हुए कि 'क्या करें, समय काट रहे हैं'—ऐसा कहना कदापि उचित नहीं है, निरर्थक है—यह हीन-भावनाका परिचायक है। ऐसा वे ही लोग कहते हैं, जिनमें जीनेकी उमंग नहीं है तथा जिन्होंने अतीतमें कड़ी मेहनत और सच्ची ईमानदारीसे जीवनयापन नहीं किया है और न ही नैतिकतापूर्ण जीवन जिया है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अर्जुनसे शरीर एवं आत्माके सन्दर्भमें खूब सुन्दर कहा है—'आत्मा अमर है, वह कभी मरती नहीं है, शरीर मरता है। आत्मा इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाती है, जैसे—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अर्थात् यह शरीर एक पुराने वस्त्रकी तरह है, जब यह अत्यधिक जीर्ण हो जाता है, तब यह (आत्मा) इसे छोड़कर दूसरा नवीन वस्त्र (शरीर) धारण कर लेती है।

जिस व्यक्तिने सम्मानपूर्वक अपना जीवन जिया हो, वह आगे भी वैसा ही जीना चाहेगा। उचित सम्मानके अभावमें उसका व्यथित होना स्वाभाविक है।

नयी पीढ़ीके कई लोग वृद्धोंका तिरस्कार तथा निरादर करते हैं। वे प्राय: उन्हें कहते हैं—'आप समझते नहीं, आपको क्या करना है, आप चुप रहिये' आदि अनावश्यक अपशब्द कहकर उनकी उपेक्षा करते हैं, जिससे उन्हें अपमान महसूस होने लगता है और वे जीवनको 'भार' समझने लगते हैं। जिसने अपने जीवनकालमें इस तरहका अपमान कभी न सहा हो, भला उनसे पूछिये कि उनपर क्या गुजर रही है? परिणामस्वरूप परिवारसे उनकी श्रद्धा एवं स्नेह घटने लगता है और अन्तर्मनमें जलन, कुढ़न, ईर्ष्या एवं घृणा-जैसी भावना उजागर होती है, जो परिवारके लिये दुष्परिणामकारक होती है और कालान्तरमें उन्हें भोगना पड़ता है।

युवापीढ़ी इस बातकी गाँठ बाँध ले और कदापि इसे विस्मृत न करे कि एक दिन उन्हें भी वृद्ध होना है। उन्होंने अपने बुजुर्गोंके साथ जैसा व्यवहार किया है—

'जैसा बोओगे वैसा काटोगे' के सूत्रानुसार उसे भोगनेके लिये सदा तैयार रहना चाहिये। अतएव ऐसा करनेसे बचें। हमें जीते जी सुधर जाना चाहिये। वृद्ध एवं बुजुर्गोंका वैसा सम्मान करें, जैसा कालान्तरमें हमें अपेक्षित है। वरना वही कटोरा हमें आगे सुरक्षित तैयार मिलेगा, निश्चित रूपसे अपने लिये।

वृद्ध माता-पिता लक्ष्मीनारायणस्वरूप हैं, उनकी सेवा ईश्वर-सेवा है।

संत-चरित—

भक्त बालीग्रामदास

श्रीजगन्नाथपुरीसे दो कोसपर बालीग्राम नामका एक कस्बा है। इस ग्राममें 'दासिया बावरी' नामका एक भील रहता था। दासिया बहुत गरीब था। कपड़े बुनकर किसी प्रकार अपना और अपनी स्त्रीका पेट भर पाता था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। भील होनेपर भी इन स्त्री-पुरुषको भगवान्‌का कीर्तन सुनना बहुत प्रिय लगता था। कहीं भी गाँवमें कथा-कीर्तन होता तो यह वहाँ जाता और पीछे बैठा सुना करता। कथा या कीर्तनके पदोंका अर्थ तो भला, इन अशिक्षितोंकी समझमें क्या आता; पर सुननेमें ही इनका प्रेम था।

भगवन्नामकी अपार महिमा है। बिना समझे भी उसे सुनना, बोलना बहुत प्रभाव रखता है। दीर्घकालतक कीर्तन सुनते-सुनते दासिया भीलका हृदय भी शुद्ध हो गया। भगवान्‌में उनकी रुचि हो गयी। धीरे-धीरे उसके मनमें वैराग्यका उदय हुआ। अब उसे खाने-पीनेकी भी सुधि नहीं रहती। अनमने भावसे ही वह घरके सब काम करता। उसे अब एक ही चिन्ता रहती—'मैंने बड़ी नीच जातिमें जन्म लिया है। मुझे भगवान्‌की भक्ति क्या है, यह भी मालूम नहीं। मेरा मनुष्य-जीवन व्यर्थ गया। श्रीहरिके पावन पादपद्मोंको मैं कैसे पा सकता हूँ।'

श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राका समय आया, दूर-दूरके यात्री रथयात्राके दर्शन करने पुरी आने लगे। बालीग्राम तो पुरीसे केवल दो ही कोसपर था। दासियाको इस बातके सोचनेसे ही बड़ा कष्ट होने लगा कि इतने समीप रहकर भी मैंने श्रीजगन्नाथस्वामीकी रथयात्राके दर्शन नहीं किये। इस वर्ष दूसरे यात्रियोंके साथ वह भी पुरी गया। रथयात्राके दिन विशाल रथमें बैठे उन श्रीजगन्नाथजी के दर्शन करके, जो दीनोंके एकमात्र सर्वस्व हैं, वह आनन्दसिन्धुमें डूब गया। वह भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न हो गया। ध्यानमें ही उसने भगवान्‌के ज्योतिर्मय चतुर्भुज स्वरूपके दर्शन किये। अब तो दासियाके नेत्रोंसे धाराएँ चलने लगीं। दोनों हाथ उठाकर वह प्रार्थना करने लगा—'प्रभो! आपने जब दया करके मुझे दर्शन दिये हैं, तब मैं अब पतित नहीं हूँ। आपको इन नेत्रोंसे देखकर भी क्या कोई पतित रह सकता है। मुझ-सरीखे पामर महापापीके भाग्यमें आपके दर्शन कहाँ। प्रभो! यह तो आपकी ही दया है। मेरे स्वामी! अब मुझे अपना लो। मेरे पाप-ताप सदाके लिये दूर कर दो! अपनी विरदकी रक्षा करो, नाथ।'

दासिया रथयात्राके दर्शन करके कैसे घर लौटा, उसे कुछ स्मरण नहीं। गाँवके दूसरे यात्री लौट रहे थे, उनके कहनेसे अर्धचेतनामें ही वह घर आया। घरपर पहुँचते ही स्त्रीने कहा—'आप भूखे होंगे, भोजन कर लें।' वह बिना कुछ बोले भोजन करने बैठ गया। उसकी स्त्रीने हँड़ियामें भात बनाया था। उसीपर शाक रखकर उसने पतिके सम्मुख रख दिया। भोजन करनेके बदले दासिया उस हँड़ियाको ध्यानसे देखने लगा। उसे हँड़ियाका लाल रंग भगवान्‌की रत्नारी आँखें जान पड़ा, भातको उसके भीतरका सफेद भाग और शाकको उसने पुतली देखा। मारे हर्षके वह खड़ा होकर नाचने लगा।

दासियाकी स्त्री पतिको नाचते, रोते, हँसते, पागलकी-सी भंगिमा करते देख डर गयी। उसे लगा कि अवश्य रथयात्रा देखने जाते या लौटते समय मेरे पतिको कोई भूतप्रेत लग गया है, रोते हुए उसने पड़ोसियोंको पुकारा। लोगोंने आकर स्त्रीको धीरज बँधाया। वे दासियाको पुकारने, सावधान करने और भोजन करनेको कहने लगे। दासियाने कहा—'भाइयो! रथपर विराजमान श्रीजगन्नाथके कमलनेत्र आपलोग क्या नहीं देख रहे हैं? ओह, कितना सुन्दर है भगवान्‌का नेत्र!' वह फिर भावावेशमें नृत्य करने लगा।

दासियाके घर बहुत-से लोग एकत्र हो गये थे। रथयात्रासे लौटते हुए बहुत-से महात्मा भी उस ग्राममें ठहरे थे। उनमेंसे भी कुछ लोग वहाँ आ गये थे। एक भक्तने दासियाकी भाव-स्थितिको समझ लिया। उन्होंने सबसे कहा—'यह सचमुच भगवान्‌का दासिया—'दास' ही है। हम इसे आजसे बालीग्रामदास कहेंगे, क्योंकि बालीग्रामके इस 'दास' ने अपने जन्मसे गाँवको कृतार्थ कर दिया है।' तभीसे 'दासिया बावरी' का नाम

बालीग्रामदास हो गया। एक भक्तने स्त्रीको समझाया कि दूसरे बर्तनमें भात निकालकर और सागको अलग रखकर पतिको भोजन करनेके लिये दे। स्त्रीने हँड़िया उठा ली। एक पत्तेपर भात और दूसरेपर शाक रखकर पतिको दिया। तब बालीग्रामदासने भोजन किया।

दासियाका केवल नाम ही नहीं बदला, वे अब सम्पूर्ण ही बदल गये थे। चौबीसों घंटे भगवान्के ध्यानमें ही डूबे रहते थे। बाहरसे कुछ काम भी करते, तो भी चित्त श्रीजगन्नाथजीके ध्यानमें डूबा रहता। उनके मनमें अब भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शनकी तीव्र लालसा जाग उठी। भगवान्का वियोग अन्तमें असह्य हो गया। उनके प्राण तड़फड़ाने लगे। भक्तकी व्याकुलताकी वही घड़ी तो धन्य होती है। भगवान् क्या जाति-पाँति या साधन-भजन देखते हैं? जब कोई सब ओरसे निराश होकर, चारों ओरसे थककर उन्हें पुकारता है और उसके प्राण व्याकुल हो उठते हैं, उसी समय प्रभु पधारते हैं। बालीग्रामदासकी वह व्याकुलता भी धन्य हुई। मन्द-मन्द मुसकराते श्रीहरि प्रकट हो गये। भगवान्ने वरदान माँगनेको कहा। दासियाने कहा—'नाथ! मुझ-जैसे अधमको जब आपने दर्शन दिये, तब और मुझे क्या चाहिये। आपके चरणकमलोंका दर्शन करते हुए मैं मरूँ, यही मुझे चाहिये। हाँ, जब मैं आपका ध्यान करूँ, तभी मुझे आपके दर्शन हों—यही आशीर्वाद आप मुझे दें।

प्रभुने कहा—'बेटा! तेरी सभी प्रार्थनाएँ पूरी होंगी। जब तू पुरी आयेगा, तब मैं मन्दिरके नीलचक्रपर बैठ जाऊँगा। उस समय तू जिस रूपमें चाहेगा, उसी रूपमें मेरे दर्शन तुझे होंगे। तू मुझे जो कुछ देगा, मैं उसीका भोग लगाऊँगा।' इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

दासिया अपनेको नीच जातिका मानकर बहुत संकोच करते थे। उनके मनमें इच्छा तो थी कि भगवान् उनकी भेंट स्वीकार करें। पर वे प्रार्थना करनेका साहस नहीं कर सके थे। सर्वान्तर्यामी भगवान्ने भक्तकी इच्छा जानकर स्वयं उसकी भेंटका भोग लगाना स्वीकार किया। प्रात:काल उठते ही दासिया सोचने लगे कि भगवान्को क्या भोग लगाऊँ। उन्होंने कुछ कपड़ा बुन रखा था। उसे बेचने ग्राममें निकले। एक ब्राह्मणने कपड़ा खरीदा। कपड़ा लेकर ब्राह्मण पैसे लेने घरमें गये और दासिया द्वारपर खड़े रहे। द्वारपर खड़े-खड़े दासियाने देखा कि एक नारियलका नया पेड़ है, उसपर पहला ही फल लगा है। फल पक गया है। वे सोचने लगे—'यदि यह फल मुझे मिल जाय तो इसे भगवान्को चढ़ाऊँ।'

पैसा लेकर जब ब्राह्मण निकले, तब दासियाने वह नारियल माँगा। ब्राह्मणने पहले तो वृक्षका पहला फल देना अस्वीकार कर दिया, पर फिर उसके मनमें लोभ आ गया। दासियाके आग्रह करनेपर कपड़ेके पूरे मूल्यके रूपमें नारियल देना उसने स्वीकार कर लिया। दासियाने बड़ी प्रसन्नतासे यह शर्त मान ली और नारियल लेकर घर चले आये।

बालीग्रामदास रोज कपड़ा बुनते थे। उस कपड़ेको बेचकर उन्हीं पैसोंसे दूसरे दिनके लिये सूत खरीदते और जो कुछ बचता, उससे रूखा-सूखा खाकर काम चलाते। नारियलके लिये कपड़ेका पूरा मूल्य दे आनेका अर्थ उनके लिये केवल एक दिनका उपवास ही नहीं था। आगे सूत खरीदनेको पैसे न रहनेसे उनकी आजीविका ही नष्ट हो गयी थी। परंतु भगवान्को भेंट करनेके लिये मनचाही वस्तु मिल गयी, इस आनन्दमें अपने भूखों मरनेकी बातका ध्यान भी उनके मनमें नहीं आया।

एक ब्राह्मण पूजाकी सामग्री लिये जगन्नाथजी जा रहे थे। प्रार्थना करनेपर बड़ी सरलतासे उन्होंने वह नारियल ले जाकर भगवान्को चढ़ाना स्वीकार कर लिया। नारियल देते हुए दासियाने कहा—''महाराज! मेरे फलको सब सामग्रियोंके साथ मत चढ़ाना। इसे भगवान्के सामने भी मत रखना। अपनी पूजासे आप जब छुट्टी पा लें, तब सबसे पीछे गरुड़स्तम्भके पास खड़े होकर इसे लेकर कहना—'प्रभो! बालीग्रामदासने आपके लिये यह श्रीफल भेजा है। आप इसे ग्रहण करें।' आप इतना कहकर चुपचाप खड़े रहना। भगवान् यदि अपने हाथसे इसे ले लें तो दे देना, नहीं तो मेरा लौटा लाना।''

बालीग्रामदासकी बात सुनकर ब्राह्मण हँस पड़े; किंतु उन्होंने उनकी बात स्वीकार कर ली। एक भोले भीलकी प्रसन्नताके लिये एक नारियल ले जाकर इतना

कह देना उन्हें कठिन नहीं जान पड़ा। ब्राह्मणने भगवान्‌की विधिपूर्वक पूजा की और प्रसाद लेकर कुछ देर विश्वास किया। घर लौटते समय उन्हें उस नारियलकी याद आयी। उसे लेकर वे गरुड़स्तम्भके पास गये। हाथमें नारियल लेकर उन्होंने प्रार्थना की—'स्वामी! आपके लिये बालीग्रामदासने यह श्रीफल भेजा है और कहा है कि भगवान् अपने हाथसे लें तो देना, नहीं तो लौटा लाना। अब आप या तो कृपा करके इस फलको ग्रहण करें या मैं लौटा ले जाऊँ।' ब्राह्मणने नेत्र बन्द करके भगवान्‌का ध्यान किया, इतनेमें भगवान्‌ने हाथ बढ़ाकर फल उठा लिया। आश्चर्यचकित ब्राह्मण नेत्र खोलकर देखता है कि श्रीजगन्नाथजी उस फलका भोग लगा रहे हैं। वह भगवान्‌के कर-स्पर्शसे आनन्दमग्न हो गया। बालीग्रामदासके सहज विश्वास और प्रेमकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। घर लौटकर ब्राह्मणने बालीग्रामदासको मन्दिरकी सब घटनाएँ सुनायीं।

इस घटनाको सुनकर दासियाका हृदय आनन्दसे नाच उठा। वे समझ गये कि भगवान् प्रेमसे दी हुई नीच जातिके पुरुषकी भेंट भी स्वीकार करते हैं। अब वे स्वयं प्रसाद लेकर निःसंकोच प्रभुके पास जानेका विचार करने लगे। नीलचक्रपर प्रभुके दर्शन देनेकी बात भी उन्हें स्मरण आयी। अब वे क्या लेकर नीलाचल जायँ? इतनेमें एक माली आम बेचने आया। सुन्दर आमोंको देखकर मालीको मुँहमाँगे दाम देकर उन्होंने दो टोकरियोंमें उनको सजाया। काँवर बनाकर आमोंको लिये वे पुरी पहुँचे।

पके सुन्दर आम लेकर बालीग्रामदासको आते देख पण्डोंने उन्हें घेर लिया। वे परस्पर झगड़ने लगे। बालीग्रामदासने उनसे कहा—'आपलोग क्यों व्यर्थमें झगड़ा करते हैं। ये आम आपमेंसे किसीको नहीं मिलेंगे। इन्हें तो मेरे प्रभु खायँगे और मैं अपने हाथोंसे खिलाऊँगा।'

पण्डोंकी समझमें यह बात कैसे आये। वे तो यही जानते हैं कि जो कोई भी जो कुछ भगवान्‌को भोग लगाने लाता है, वह उन्हींको देता है। भगवान्‌के सामने कुछ देर रहनेके पश्चात् वह पदार्थ उन्हींका हो जाता है। एक भील भला, अपने हाथसे भगवान्‌को कैसे खिलायेगा। उसे मन्दिरमें कोई कैसे जाने देगा। परंतु उनके ऐसे तर्क, ऐसी बातें बालीग्रामदासको जँची नहीं। पण्डे क्रोधित हुए। पर उन्होंने किसीकी कुछ सुनी नहीं। पण्डे भी उनके पीछे लग गये कि गरुड़स्तम्भसे आगे तो यह भील जा नहीं सकेगा, फिर हममेंसे किसीको आम देगा ही।

बालीग्रामदास मन्दिरके बड़े द्वारसे भीतर आये। नीलचक्रके दर्शन होते ही वे प्रेममें विह्वल हो उठे। उन्हें उस नीलचक्रपर साक्षात् श्रीहरिके दर्शन हुए। बारंबार भूमिमें लेटकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया और फिर एक-एक आम हाथमें लेकर कहने लगे—'लो, प्रभो! आज इस दासको कृतार्थ करो।' देखते-देखते दोनों टोकरियाँ खाली हो गयीं।

पण्डोंने आमोंको अदृश्य होते देखा तो पहले उन्होंने इसे जादू समझा; किंतु मन्दिरमें जाकर देखा तो भगवान्‌की रत्नवेदीके पास छिलके और गुठलियोंका ढेर लगा है। अब उन्हें बालीग्रामदासकी भक्तिका प्रभाव समझ पड़ा। प्रभुकी प्रसादी माला भक्तके गलेमें पहनाकर वे कहने लगे—'भक्तराज! तुम धन्य हो। हमलोग तो नाममात्रके भगवान्‌के सेवक हैं। जगदीशके सच्चे सेवक तो तुम्हीं हो। तुम्हारे दर्शन करके आज हम कृतार्थ हो गये।'

बालीग्रामदास इस सम्मानसे घबरा उठे। पुजारी ब्राह्मणोंके चरणोंमें गिरकर वे कहने लगे—'मैं तो नीच जातिका हूँ। मुझमें नामको भी भक्ति नहीं है। यह तो भगवान्‌की और उनके भक्त आपलोगोंकी कृपाका प्रभाव है।'

बालीग्रामदास सम्मानसे डरकर पुरी छोड़कर घर लौट आये, पर यहाँ भी उनका दर्शन करनेके लिये लोगोंकी भीड़ लगी ही रहती थी। इससे उन्हें बड़ी लज्जा आती थी कि लोग उनको भक्त कहते हैं। उन्होंने घरसे बाहर निकलना ही छोड़ दिया। अब वे घरका द्वार बन्द करके रात-दिन भगवान्‌के कीर्तन, ध्यान, भजनमें लगे रहने लगे। स्त्री-पुरुष दोनों जीवनभर भगवान्‌के स्मरणमें निमग्न रहे और अन्तमें नश्वर शरीर छोड़कर भगवान्‌के दिव्यधाममें उन परम प्रभुके सेवक बन गये।

'दीनबन्धु, वाही दिना, देह देत, सब देत'

(श्रीसत्यदर्शनजी मिश्र)

दीन बंधु, वाही दिना, देह देत सब देत।
नर अपने अज्ञान सों, वृथा सोच कर लेत॥

अर्थात् प्रभु जिस दिन आपको देह देते हैं, उसी दिन सब कुछ दे देते हैं, मनुष्य अपने अज्ञानवश वृथा ही ऐसा समझता है कि आज उसे यह मिला। इस दोहेकी गहराईमें जायँ तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि वास्तवमें हमारे प्रभुने हमारे जन्म लेते ही सब कुछ हमें दे दिया कि हमें क्या, कब, कहाँ और कैसे प्राप्त होगा। ये तो हम अज्ञानी नर हैं, जो यह सोचते हैं कि हमें आज मिला। हमें जब जिस चीजकी जरूरत होती है तब वह हमें प्राप्त हो जाती है या यूँ कहें कि हमारे प्रभु हमें उपलब्ध करा देते हैं। पैदा हुए तब मुँहमें दाँत नहीं पेटमें आँत नहीं, कुछ खायें तो कैसे और खा भी लें, तो वह पचेगा कैसे; सो भगवान्ने माँके आँचलमें पचा-पचाया पौष्टिक दूध उतार दिया। न चबानेकी जरूरत न पचानेकी।

रोजी-रोटीकी चिन्तामें हम दिन-रात घुला करते हैं, ऐसेमें ***'जब दाँत न थे, तब दूध दियो, अब दाँत भये कहा अन्न न दैहैं॥'*** को ध्यानमें रखते हुए हमें अपने प्रभुपर अटूट विश्वास रखना चाहिये। हमारे सामने अनेक उदाहरण प्रतिदिन, प्रतिपल गुजरते हैं, पर हम अपनेमें मस्त इनपर ध्यान ही नहीं देते और सोचा करते हैं कि ये सब हम कर रहे हैं।

जरा अपने दिमागपर जोर डालिये और बताइये कि जब आप सब्जी लेने बाजार गये। किसी भी सब्जीको आपने चार दुकानोंमें देखा। उसका भाव-ताव पूछा। दो दुकानोंमें बिलकुल एक-जैसी सब्जी एक-जैसे दामपर मिल रही थी, पर आपने एक दूकानसे न खरीदकर दूसरी दूकानसे खरीदी, सो क्यों? चार दूकानोंमें कपड़ा देखा और किसी एकसे लिया या सारा बाजार छोड़कर किसी एक दूकानमें घुस गये और ले लिया दस हजारका कपड़ा।

घरमें काम करानेके लिये मजदूर लेने गये और न चाहते हुए भी उस मजदूरको ले आये, जो शक्लसे आपको बिलकुल भी भाता न था।

हम जाना कहीं चाहते थे। इतनेमें कोई मित्र आया। हमें कहीं दूसरी जगह ले गया और वहाँ किसीसे विवाद हो गया, तब हम सोचने लगते हैं कि हम तो कहीं और जा रहे थे, पर इन मित्रकी वजहसे यहाँ आये और विवाद हो गया, काश इनकी बात न मानी होती, तो ये विवाद न होता।

घरसे निकले कि सरावगीजीकी दूकानसे आटा लेना है, पर उनके यहाँ पहुँचनेपर पता चलता है कि आटा कुछ देर पूर्व ही खत्म हो गया है। तब बिचपुरियाजीकी दूकानसे आटा खरीदा। ऐसी-ऐसी अनेक घटनाएँ प्रतिदिन, प्रतिपल हमारे सामनेसे गुजरती हैं। हम अपनी मर्जीसे आटा, सब्जी, कपड़ा आदि नहीं खरीद सकते, तो बड़े काम क्या खाक करेंगे अपनी मर्जीसे?

देखनेमें ये एकदम साधारण घटनाएँ लगती हैं, पर पारलौकिक दृष्टिसे देखें तो प्रभुकी योजनाका अंश ही नजर आयेंगी। उन प्रभुने सब कुछ सुनिश्चित कर रखा है कि हमें क्या, कब, कहाँ, क्यों और कैसे मिलेगा।

मेरे जीवनमें भी ऐसी अनेक घटनाएँ हुई होंगी, परंतु जिन दो घटनाओंसे प्रभुने मुझे ये दृष्टि दी, उनका उल्लेख सुधी पाठकोंके लिये करना चाहूँगा।

एक बार मुझे जानकारी लगी कि एक पण्डितजीके पास नारद-संहिता है, जिसमें सभीका भविष्य लिखा है। उसी शहरमें मेरी मँझली बहन ब्याही है, सो एक दिन मैं उन्हें, अपनी पत्नी तथा बेटीको लेकर उन पण्डितजीके पास जा पहुँचा। पण्डितजीने मेरे हाथकी छाप ली और एक घण्टे बाद आनेको कहा। निर्धारित समयपर हम सभी पण्डितजीके पास पहुँच गये, तब पण्डितजीने नारद-संहिताके चार पृष्ठ निकाले, जो उन्होंने मेरे हाथकी छापसे मिलाकर निकाले थे और उन्हें बाँचना शुरू

किया, उन पृष्ठोंमें लिखा था कि—

जातक इकतीस वर्षकी उम्रमें अपनी बहन, पत्नी तथा बच्चीके साथ अपने भविष्यको जाननेकी इच्छासे आयेगा। अन्य अनेक प्रमाणित बातोंको बतानेके साथ ही यह भी बताया कि जातक विद्यालय-संचालनका कार्य करेगा। इस बातको सुनकर मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि अभीतक तो सारी बातें सही थीं, पर इस विद्यालय-संचालनकी बात मेरे गले न उतर रही थी। जिसका कारण था कि मेरा दूर-दूरतक शिक्षाके क्षेत्रसे कोई वास्ता न था। उसपर मैं मैट्रिक फेल, मैं क्या विद्यालय खोलूँगा और क्या उसका संचालन करूँगा। लगभग अनपढ़ होनेके कारण कोई मुझे विद्यालय-संचालनका दायित्व सौंपेगा, इसकी भी दूर-दूरतक कोई सम्भावना नहीं थी। बादमें आगे चलकर मेरे पूज्य पिताश्रीने एक विद्यालय भवनका निर्माण-कार्य कराया, परंतु अपने जीवन-कालमें वे विद्यालयकी मान्यता लेकर संचालन न कर सके। उनके जीवन-कालमें तथा उनके निर्वाणके बाद सालों वह भवन बन्द पड़ा रहनेसे भुतहा प्रचारित हो गया था। लोग कहने लगे थे कि उस भवनमें बाईस खब्बीसों (भूत-प्रेतों)-का डेरा है। जो भी वह भवन लेगा, उसका वंश नाश हो जायगा। इस कारण मेरे भाइयोंने बँटवारेमें उस भवनको लेनेसे इनकार कर दिया, घरमें सम्पत्ति-विवाद बहुत बढ़ गया। तब घरका विवाद निपटानेकी गरजसे मैंने वह भवन यह सोचकर ले लिया कि उसे जीवन-पर्यन्त नहीं खोलूँगा। ऐसे ही पड़ा रहेगा। इस प्रकार वह भवन मेरे हिस्सेमें आया तथा कुछ भूतोंके भयसे और कुछ भवन काफी बड़ा तथा विद्यालयकी योजनासे बना होनेके कारण उसका कोई उपयोग नहीं हो सका।

लगभग दो वर्षोंतक वह भवन बन्द पड़ा रहा। अचानक एक दिन दो बहनें मेरे पास आयीं और कहने लगीं कि वे गरीब बस्तीमें बच्चोंको निःशुल्क पढ़ाया करती हैं, परंतु वे जिसके मकानमें पढ़ाती हैं, उनके बेटेका विवाह होनेवाला है, अतः उनका भवन खाली नहीं है, सो वे मुझसे सम्पर्क करने आ गयीं। मेरा उक्त भवन खाली पड़ा ही था, सो मैंने उन्हें वह भवन निःशुल्क दे दिया। कुछ दिनों बाद मैं वहाँ अचानक यूँ ही चला गया। सुश्री अमरजीत मेहरा बच्चोंको पढ़ा रही थीं। उन्होंने विद्यालय खोलनेका प्रस्ताव रखते हुए मुझसे कहा कि भाई साहब, आपके पिताजी इतना बड़ा भवन बनवाकर आपको दे गये हैं, तो उनकी इच्छापूर्ति करना आपका कर्तव्य बनता है, आप विद्यालय खोलनेका प्रयास करें, हम लोगोंसे जो भी बन पड़ेगा, आपकी सहायता करेंगी। उन बहनोंकी प्रेरणाने काम किया और मैंने पिताजीके नामपर विद्यालय एक शिक्षण-संस्थाका पंजीयन करवाकर माँके नामपर विद्यालय स्थापित किया। अनेक वर्षोंतक उन बहनोंने अपनी निःशुल्क सेवाएँ प्रदान कीं और जब विद्यालय कुछ चलने लगा तो वे चली गयीं। आज विद्यालय-परिवार उन दोनों बहनोंका हृदयसे आभार व्यक्त करता है। फलतः २००४ में प्रारम्भ हुआ वह विद्यालय आज दसवींतक हो गया है, और लगभग ३०० बच्चोंको शिक्षित कर रहा है।

सबसे बड़ी बात उस विद्यालयका संचालन पूर्णतः मेरे द्वारा ही किया जा रहा है। पूरे घटनाक्रमपर नजर डालें तो पिताजीका बिना किसी पूर्व योजनाके विद्यालय-भवन बनवाना, वर्षोंतक उसका निष्प्रयोज्य पड़े रहना और भुतहा प्रचारित होना, जिसके कारण मेरे हिस्सेमें पड़ना, दो बहनोंका आकर निःस्वार्थ भावसे विद्यालय चलाना और फिर चले जाना तथा मेरे द्वारा विद्यालयका संचालन—सब प्रभुकी ही तो लीला है। संक्षपमें कहें तो यह सब मेरे हाथों विद्यालय-संचालनकी प्रभुकी योजना नहीं तो और क्या है? इस घटनासे यह अनुभूति होती है कि

'दीन बंधु, वाही दिना, देह देत सब देत।'

गो-चिन्तन—

गोपालका गोचारण

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

'आनन्दवृन्दावनचम्पू' में कथा है कि एक बार श्रीकृष्णचन्द्र गोचारणार्थ वन जानेको मचल पड़े। प्रभुने कहा—'मैया, मैं तो गोचारणके लिये जाऊँगा। माता नन्दरानी यशोदा और बाबा नन्दराय तो अपने ललनको एक क्षणके लिये भी अपनेसे वियुक्त होने देना नहीं चाहते थे। फणीको जैसे मणिसे लोकोत्तर अनुराग होता है, वैसे नन्दराजको। हमारे ललन गोचारणके लिये जायँ, यह वियोग कैसे सहन हो? रात्रिमें जब व्रजगेहिनी अपने ललनको अंकमें लेकर सोती तो बीच-बीचमें जागती, बार-बार अपने ललनको स्पर्श करती। जैसे किसी महारंकको चिन्तामणि मिले और वह उसे बार-बार सम्हाले, वैसे ही व्रजेन्द्रगेहिनीका प्रभुमें अद्भुत अनुराग था, जिससे वह बार-बार चुम्बन करती, मस्तक सूँघती। वही श्रीकृष्ण गोवत्स-चारणके लिये जानेको मचले। फिर तो यह श्यामसुन्दर नटखटकी मचल। मैया कहती—'न जाओ लाला!' लाला कहते—'नहीं मैया, मैं तो जाऊँगा। यह गोचारणरूप अपना स्वधर्म है। उसका पालन करना ही चाहिये।' आखिर जब श्यामसुन्दर न माने तो कहा—'अच्छा लाला, ठीक मुहूर्त मिले तो जाना। मैं गर्गमहाराजसे पूछूँगी।'

भगवान्‌की इच्छा होनेपर क्या देर! उसी समय श्रीगर्गाचार्यजी आ गये। प्रभुको देख, पूछा—'आज क्यों लाला मचला हुआ है?' नन्दरानीने कहा—'महाराज! लाला कहता है, मैं गोचारणके लिये वृन्दावन जाऊँगा, सो आप मुहूर्त बताओ।' गर्गाचार्यने भी पत्रा देखकर बतलाया—'ठीक तो है। यह गोपाष्टमी बड़ा अच्छा दिन है। उसी दिन मुहूर्त करो।' गर्गाचार्यका वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र परम प्रसन्न हुए। गोपाष्टमी आयी। उस दिन विधि-विधानपूर्वक गोपूजन हुआ। अम्बाने श्रीकृष्णसे गौओंको साष्टांग प्रणाम कराया। प्रभु अपने अम्बा, बाबाको प्रणामकर वृन्दारण्य पधारने निकले। अब अम्बा बार-बार गोपालोंको समझाती, कहती कि 'देखो, हमारे लालाकी रक्षा करना; उसे अकेले कहीं न जाने देना।'

श्रीकृष्णका श्रीहस्तारविन्द गोपालोंके हाथमें देती। इस तरह कहते-कहते मैया-बाबा साथ-साथ चलते हैं, यह देख श्यामसुन्दर कहते हैं—'मैया, जाऊँगा मैया।' बाबाने कहा—'लाला पादत्राण तो पहनो!' प्रभु कहते—'नहीं, गौ हमारी इष्टदेवी हैं। यदि निरावरण चरणसे ये जायेंगी तो हम कैसे पादत्राण धारण करें? पशुपालन ही हमारा इष्टदेवताराधन है।' आराधनमें यही प्रकार होता है। दिलीप भी जब नन्दिनीके साथ उसकी सेवा करने वनमें गये, तब इसी तरह-से गये।

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां
निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥

(रघुवंश २।६)

श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्दने तो धर्मसंस्थापनार्थ अवतार लिया है—'**यदा यदा हि धर्मस्य**' (गीता ४।७) ऐसा भगवान्‌का ही वचन है। स्वयं आचरणद्वारा धर्म स्थित होता है। इसीलिये गोचारणद्वारा स्वधर्म-स्थापन किया। भगवान् गौओंकी खूब सेवा करते हुए चलते हैं। इसीलिये निरावरण-चरण चले। अतएव वृन्दारण्यको साक्षात् चरणस्पर्श हुआ, इतरोंको परम्परया। अन्य किसी धामको भी कृष्णके निरावरण चरणोंका स्पर्श नहीं हुआ। इसीलिये जो अन्यत्र सेव्या श्रीलक्ष्मी, वह भी यहाँपर सेविका होकर रहती है एवं चरणसम्बद्ध वृन्दावनके सम्बन्धसे ही समस्त भूमिने अपनेको सौभाग्यशालिनी समझा। इसलिये कि प्रभु हमारेमें ही हैं, भूमि गर्वीली हो गयी।

आरोग्य-चर्चा—

धार्मिक व्रतोंसे आरोग्यकी प्राप्ति

(डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्हेरे)

यदि आज हम भारतीय समाजकी ओर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट रूपसे दिखायी देती है कि हमारा समाज पाश्चात्त्य संस्कृतिसे इतना प्रभावित हो गया है—इतना ग्रस्त हो गया है कि वह अपनी स्वयंकी पहचान ही भूल गया है। वह अपने धार्मिक व्रतोंको हेय दृष्टिसे निहारता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे लोगोंको इन्हें आचरणमें लानेकी सलाह देनेका प्रयास करता है, तो वे उलटा प्रश्न करते हैं, कहते हैं कि 'धार्मिक व्रतोंके पीछे कोई वैज्ञानिक आधार या सिद्धान्त है क्या? इनके पालनसे कोई लाभ है क्या?' ऐसे न जाने कितने प्रश्नोंकी बौछार करके वे स्वयं तो भ्रमित रहते ही हैं, दुर्बल आस्थावालोंको डिगा भी देते हैं।

आजकलकी छोटी-छोटी बस्तियों, कस्बों, गाँवों, शहरों और बड़े-बड़े नगरोंमें निवास करनेवालोंकी ओर निगाह डालें, तो परिणाम अपने-आप सामने आता है। जरा-सी छींक आने, थोड़ा-सा ज्वर होने तथा सर्दी-खाँसीसे पीड़ित होनेपर लोग डॉक्टरकी शरणमें जाते हैं। तुरन्त मूत्र तथा रक्त आदिकी जाँच करानेकी सलाह मिलती है और रिपोर्ट देखकर चिकित्सक इलाज करते हैं। बड़े-बड़े शहरों-नगरोंमें नर्सिंग-होम और विशालकाय हॉस्पिटलोंकी शृंखलाएँ फैल रही हैं। आजके युगमें कैंसर, ब्लडप्रेशर, मधुमेह, गठिया आदि रोगोंसे अधिकांश व्यक्ति पीड़ित हैं। कुछ रोग तो ऐसे हैं, जो धनके साथ-साथ शरीरका भी नाश कर डालते हैं।

सौ-दो सौ वर्षोंके इतिहासका ही सिंहावलोकन करें, तो आजकी तुलनामें तत्कालीन भारतीय समाज अधिक स्वस्थ था, नीरोग था। आजके जैसे भयंकर रोग कोसों दूर थे। सामान्य रोगोंका आक्रमण नहीं होता था—ऐसी बात नहीं, परंतु वे लोग धर्मशास्त्रके अनुसार आचरण करके स्वस्थ तथा नीरोग रहनेका प्रयास अवश्य करते थे और उन्हें सफलता भी मिलती थी। हमारे ऋषि-मुनियोंने 'मानव किस प्रकार स्वस्थ जीवन व्यतीत करे', इसकी खोज करके वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदके आधारपर 'धार्मिक व्रतोंका अनुपालन' करनेका उपाय प्रस्तुत किया। इन व्रतोंके पालनसे अनेक सामान्य रोगोंसे मानव मुक्ति प्राप्त करके स्वस्थ जीवनका अनुभव करते-करते मानसिक तनावसे छुटकारा पाकर भगवत्प्राप्तिका सहज सुलभ साधन भी प्राप्त कर सकता है। ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है।

भारतवर्षमें नव वर्षारम्भसे अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे संवत्सरपर्यन्त सभी तिथियोंमें व्रतोंका विधान है। मासव्रत, वारव्रत, तिथिव्रत, नक्षत्रव्रत आदि तो प्रसिद्ध ही हैं। सभी व्रत करने सम्भव तो नहीं हैं, तथापि प्रत्येक मासमें कम-से-कम एक या दो व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् नववर्षारम्भको मुख-मार्जन स्नानादिसे निवृत्त होनेके उपरान्त सर्वप्रथम कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेका विधान है। प्रतिदिन प्रात:काल कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर अनेक चर्मरोगोंसे मुक्ति मिलती है।

इसी दिनसे श्रीरामनवमीतक चैत्र नवरात्र उत्सवका शुभारम्भ होता है। अनेक स्त्री-पुरुष इसमें उपवास रखकर भगवान् श्रीराम और भवानी माताकी उपासना करके दीर्घ शान्ति और सुख प्राप्त करनेकी कामना करते हैं।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें 'अक्षय तृतीया' अत्यन्त शुभ मुहूर्त है। इस पवित्र तिथिको उपवासपूर्वक जलसे भरा हुआ मृत्तिका कुम्भ, फल, पंखा तथा दक्षिणासहित दान करनेका विधान है। इसी तिथिसे प्रतिदिन मिट्टीके घड़ेमें भरा हुआ जल पीना प्रारम्भ करना आरोग्यदायी माना जाता है। मिट्टीके सम्पर्कसे जल शुद्ध होता है। पंचतत्त्वोंमेंसे ये तत्त्व—जल और पृथ्वी शरीरके लिये पोषक बनते हैं। सर्दीके दिनोंमें बना हुआ तथा अग्निसम्पर्कसे पका हुआ मिट्टीका घड़ा अधिक उपयोगी माना गया है। फ्रिजमें रखे हुए जलकी अपेक्षा मटकेका पानी अधिक लाभकारी है।

श्रीपुरुषसूक्तमें एक ऋचा है—‘**चन्द्रमा मनसो जातः०**’ अर्थात् परमब्रह्म परमात्माके मनसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है। चन्द्रमा शीतल है। कहते हैं कि चन्द्र-किरणोंसे अमृतकी वर्षा होती है। मानवकी सम्पूर्ण क्रिया मनसे ही होती है। चन्द्रमा और भगवान् श्रीगणेशका अद्वितीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिसे मनकी शान्तिहेतु और बुद्धि-प्राप्तिहेतु श्रीगणेशचतुर्थीका उपवास फलदायी होता है। प्रत्येक मासमें दो चतुर्थी आती हैं। अधिकांश लोग कृष्णपक्षको चतुर्थीका व्रत करते हैं। दिनभर उपवास रखकर शामको भगवान् श्रीगणेशका पूजन करके चन्द्रोदयके पश्चात् चन्द्रका दर्शनकर भोजन करना उपयुक्त है। भगवान् श्रीगणेशको तिल-गुड़का नैवेद्य या मोदक अधिक प्रिय है। चन्द्रोदयके पश्चात् भोजन करनेसे अन्नमें उत्पन्न चन्द्रमाका अमृत एवं उसकी शीतलता मनको शान्ति प्रदान करती है।

धार्मिक व्रतोंमें एकादशी, प्रदोष और शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदिका बड़ा महत्त्व है। वर्षभरमें चौबीस एकादशियाँ आती हैं। इनमें विष्णुशयनी, प्रबोधिनी एकादशी तथा महाशिवरात्रि-व्रतका अपने-आपमें बड़ा महत्त्व है।

यद्यपि सालभर धार्मिक व्रतोंका अपार भण्डार है, तथापि चातुर्मास-व्रतोंके पालनका आरोग्यप्राप्तिकी दृष्टिसे अनोखा एवं अद्वितीय महत्त्व माना गया है। यदि हम चातुर्मासमें धार्मिक व्रतोंका सही-सही पालन करें तो आरोग्यप्राप्तिके साथ-साथ आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त कर सकेंगे।

चातुर्मासमें वात-पित्त-प्रकोपक साग-सब्जियोंका त्याग करना श्रेयस्कर होता है। साथ ही एक समय हलका भोजन करना चाहिये।

एक कहावत है—‘**वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः।**’ अर्थात् चिकित्सकोंके लिये शरद्-ऋतु लाभकारी है। यह एक माताकी भाँति वैद्य लोगोंकी परवरिश करती है, तो वसन्त-ऋतु एक पिताकी तरह उनका पालन-पोषण करता है। दोनों ऋतुएँ अपना प्रभाव मानवके स्वास्थ्यपर डालती हैं। अधिकांश व्यक्ति इन दो ऋतुओंके आगमनके साथ-साथ ज्वर, मलेरिया, पीलिया आदि रोगोंसे पीड़ित होते हैं। इन रोगोंसे बचनेका घरेलू सामान्य उपाय धार्मिक व्रतोंका पालन (आचरण)-कर अपने खान-पानपर ध्यान देते हुए ईश्वरकी आराधना करना है, इससे शरीर नीरोग तो रहता ही है, आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होता है।

वर्षा-ऋतुमें अनेक सब्जियाँ सड़ती हैं, उनमें कीड़े प्रवेश करते हैं, तालाब आदिका जल दूषित हो जाता है। मच्छर, विभिन्न प्रकारके कीड़े-कीट वर्षा-ऋतु और शरद्-ऋतुमें पैदा होते हैं। इन कीड़ों-मकोड़ोंसे रोग-मुक्तिके लिये धार्मिक व्रतोंका विशेषरूपसे आयोजन होता है।

आरोग्यकी दृष्टिसे सप्ताहमें कम-से-कम एक दिन उपवास करके उस दिनसे सम्बन्धित देवताकी आराधना-पूजा-अर्चना करना पुण्यदायक है। सोमवार भगवान् शंकरके लिये, गुरुवार भगवान् दत्तात्रेय-हेतु, शुक्रवार या मंगलवार माता भवानीके हेतु, शनिवार श्रीहनुमान् एवं शनिदेवकी आराधनाहेतु व्रत किया जाता है। सोमवारको शामके समय भगवान् शंकरकी पूजा-अर्चना करके भोजन करना उपयोगी होता है। अन्य दिन—रविवार और बुधवारको मध्याह्नके पश्चात् एक समय भोजन करना चाहिये। सामान्यतः दूध, फल, साबूदाना, सिंघाड़ा, मखाना आदि सात्त्विक, सुपाच्य और हलके पदार्थोंका सेवन करना अत्यन्त लाभकारी है। सम्भव हो तो पूर्णरूपसे निराहार एवं निर्जल व्रत करना चाहिये। अधिकांश व्रतों-त्योहारोंमें दान करनेकी परम्परा है। दानका बड़ा महत्त्व है।

दान देना व्यक्तिके मानसिक विकासकी दृष्टिसे और सामाजिक कल्याणकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। चातुर्मासके उपवास और नियम-धर्म इस दृष्टिसे भी उपयोगी होते हैं। उपवास और नियम-धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंका स्वास्थ्य तो उत्तम रहेगा ही, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी विकास होगा।

अतः धार्मिक व्रतोंका उचित पालन (आचरण) करनेसे शारीरिक शुद्धि होकर आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त होगी। इन व्रतोंके माध्यमसे हम ईश्वरकी भी प्राप्ति कर सकते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीकृष्ण-कथाकी प्रवाहित पावनधारा

(श्रीइंदल सिंहजी भदौरिया)

श्रीरामचरितमानसकी अद्भुत, अलौकिक, अनुपम और दिव्य महिमा है। भक्तशिरोमणि कविकुलभूषण गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें रामभक्तिकथाकी स्तुत्य सुरसरि प्रवाहित की है, जो कलिकालमें प्राणिमात्रके परम कल्याणकी सोपान है। तभी तो भगवान् शंकरजीने इसे सकल लोकको पवित्र करनेवाली गंगा कहा है—

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥

(रा०च०मा० १।११२।७)

गोस्वामीजीने मानसमें रामकथा (रामभक्ति)-को गंगाजीकी पवित्र उपमासे विभूषित किया है तथा सन्त-समाजको जंगम-तीर्थराज (प्रयागराज) कहा है और हरिहर-कथा-समागमको त्रिवेणीकी संज्ञासे सुशोभित किया है, यथा—

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

(रा०च०मा० १।२।७, १०)

तीर्थराज प्रयागमें गंगाजी, यमुनाजी एवं सरस्वतीजी (अदृश्य)-का संगम होता है। इन तीन पवित्र नदियोंके मिलनेको ही त्रिवेणी-संगम कहा जाता है।

रामचरितमानसमें श्रीरामकथासे पूर्व शिवचरित (शिवकथा)-को महर्षि याज्ञवल्क्यजीने महामुनि भारद्वाजजीको सुनाया था—

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥

(रा०च०मा० १।१०४)

श्रीराम-कथारूपी गंगामें शिव-कथाका समागम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, लेकिन त्रिवेणी-संगमके लिये श्रीकृष्ण-कथा (चरित)-के समावेश-रहस्यको गोस्वामीजीने उद्घाटित करनेके लिये हरि-प्रेरणासे श्रीकृष्ण-कथाको समास-शैलीमें चित्रित किया है, जिसका उल्लेख मानसमें शिव-कामदेव-प्रसंगमें इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

कामदेव-दहनके उपरान्त उसकी पत्नी रतिने भगवान् शिवके समक्ष रोते हुए प्रार्थना की, इससे प्रसन्न होकर भगवान् आशुतोषने कहा था कि—

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

(रा०च०मा० १।८८।१-२)

अवढरदानी भगवान् शिवने रतिसे कहा कि जब पृथ्वीका भारी भार (जो पापाचार, दुराचार, अत्याचार अन्याय और अनीति अधर्मके कारण उत्पन्न हुआ है)-को उतारने (हरण करने)-के लिये, यदुवंशमें (भगवान्‌का) श्रीकृष्णावतार होगा, तब श्रीकृष्णजीका पुत्र (प्रद्युम्न) तेरा पति होगा। मेरा यह वचन असत्य नहीं होता।

गोस्वामी तुलसीदासजी उद्भट कथाशिल्पी हैं, जिन कथाओंको जनमानस भलीभाँति जानता है। उन कथा-प्रसंगोंको बाबा तुलसी मात्र स्पर्शकर कथाक्रमको आगे बढ़ाते हैं। जैसा कि कार्तिकेय (षडानन)-के जन्म-पौरुष आदिकी कथाको मात्र दो पंक्तियोंमें ही समाहित कर देते हैं—

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥

(रा०च०मा० १।१०३ छन्द)

इसी कथा-शैलीके अन्तर्गत तुलसीदासजीने मात्र कुछ सांकेतिक शब्दोंको रेखांकितकर श्रीकृष्ण-कथामृतको मानसमें संचित किया है। एक अन्य प्रसंगमें कृष्णके पूर्वज राजा ययातिका भी मात्र सांकेतिक उल्लेख किया है, यथा—

तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ॥

(रा०च०मा० २।१७४।८)

इन कूट प्रसंगोंका कथागत वृत्तान्त इस प्रकार बताया जाता है कि राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम यदु था (इन्हींके वंशज यदुवंशी कहलाते हैं), जो महर्षि शुक्राचार्यजीकी सुपुत्री देवयानीजीसे उत्पन्न हुए थे। ययाति जब वृद्धावस्थाको प्राप्त हुए, तो उन्होंने अपने बड़े पुत्र यदुसे युवावस्था माँगी। जिसे उन्होंने पिता ययातिको देनेसे मना कर दिया। इससे कुपित होकर उनके पिता (ययाति)-

ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम और तुम्हारे पुत्र राज्य-सिंहासनपर बैठनेयोग्य नहीं होंगे। इस शापकी बात श्रीकृष्णजीने कंसवधके उपरान्त महाराजा उग्रसेनसे कही थी, जिसका उल्लेख श्रीमद्भागवतमें है—**'ययातिशापाद् यदुभिर्नासितव्यं नृपासने'** (श्रीमद्भा० १०।४५।१३)

तदुपरान्त यदुने विनीत भावसे अपने पिताकी बहुत प्रार्थना की, तब राजा ययातिने प्रसन्न होकर फिर यह वरदान दिया कि आगामी समयमें भगवान् तुम्हारे वंशमें अवतार लेंगे, उस समय तुम्हारा कुल शापमुक्त हो जायगा।

द्वापरयुगमें जरासन्ध, कंस, शिशुपाल, दन्तवक्र आदिके अत्याचारोंसे जब अधर्म बढ़ने लगा, तब आततायी दुष्टोंके संहार और धर्मात्मा सन्त-सज्जनोंके उद्धार तथा धर्म-संस्थापनाहेतु भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया। इसी तथ्यको श्रीकृष्णजीने स्वयं गीतामें अर्जुनके समक्ष उद्भाषित किया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।७-८)

भगवान्के इसी सिद्धान्तको बाबा तुलसीदासजीने भी प्रस्तुत किया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रा०च०मा० १।१२०।६—८)

कृष्ण-कथा-क्रममें अब कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्नका वृत्तान्त इस प्रकार है कि जब राक्षस शम्बरासुरको उसके गुरुने बताया था कि प्रद्युम्नके हाथों तुम्हारी मृत्यु निर्धारित है, इससे बचनेके लिये उसने सूतिकागृहसे कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्नको जब वे १० दिनके थे, उठा ले गया, और समुद्रमें डाल दिया। समुद्रमें एक बड़ी मछलीने उन्हें निगल लिया। दैवयोगसे वह मछली एक मछुआरेके जालमें फँस गयी। सुन्दर विशाल मछलीको देख उसने अच्छे पुरस्कारके लालचमें आकर शम्बरासुरको भेंट कर दी। नारदजीके बताये सूत्रके अनुसार शम्बरासुरकी पाकशालामें रह रही मायावती (जो पूर्वजन्मकी रति, कामदेवकी पत्नी थी)-ने उस मछलीके पेटसे निकले प्रद्युम्न (जिसकी वह नारदजीकी बतायी बातपर प्रतीक्षा कर रही थी)-को छिपा कर ले लिया और उसका पालन-पोषण करने लगी और समय आनेपर प्रद्युम्न शम्बरासुरका वध करके अपनी पत्नी मायावती समेत अपनी माता श्रीरुक्मिणीजीके पास आ गये, तब उन्हें नारदजीने आकर सब पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताया, उसे सुनकर सभी प्रसन्न हुए। इस प्रसंगका उल्लेख श्रीमद्भागवतमें भी है।

यहाँ यह तथ्य भी अनुशीलनीय है कि परम राम-उपासक गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामभद्र और श्रीकृष्णचन्द्रमें सदा अभेदबुद्धि रखते थे। इसलिये उन्होंने अपनी सुविख्यात कालजयी कृतियों विनय-पत्रिका और श्रीकृष्णगीतावलीमें श्रीकृष्णस्वरूपका एवं उनकी ललित लीलाओंका अति रोचक तथा मनोहारी चित्रण किया है।

श्रीकृष्णगीतावलीमें केशवकी सुकीर्तिका वर्णन करते हुए उसे प्रत्येक युगमें सर्वक्लेशका नाश करनेवाली तथा अमंगलको मंगलमयी बना देनेवाली बताया है यथा—

जुग जुग जग साके केसव के
समन कलेस कुसाज सुसाजी।
तुलसी को न होइ सुनि कीरति
कृष्न कृपालु भगति पथ राजी॥

(श्रीकृष्ण-गीतावली ६१।५)

श्रीराम एवं श्रीकृष्णके प्रति तुलसीदासजीकी इस अभिवन्दनीय अभेदभक्तिका ही प्रतिफल है, जो उन्होंने श्रीरामचरितमानसमें श्रीराम-कथा तथा शिव-कथारूपी गंगा-यमुना-संगमके मध्य प्रतीकात्मक पावन कृष्ण कथारूपी सरस्वतीजीकी धाराको समाहितकर कथागत त्रिवेणी प्रवाहित की है।

इस महिमामयी कृष्णकथारूपी अदृश्य (विलुप्त) सरस्वती नदीके श्रीरामचरितमानसरूपी गंगा एवं शिव-कथारूपी यमुनामें सम्मिलनसे मानसकारकी त्रिवेणी-समागमकी पुनीत परिकल्पना प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रही है। जैसा कि मानसकारका उद्घोष है—

हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

सुभाषित-त्रिवेणी

जीवलोकके सुख

[Sources of happiness on the earth]

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

राजन्! धनकी आय, नित्य नीरोग रहना, स्त्रीका अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्रका आज्ञाके अन्दर रहना तथा धन पैदा करनेवाली विद्याका ज्ञान—ये छः बातें इस मनुष्यलोकमें सुखदायिनी होती हैं।

In this world the following six happenings are a source of joy : Steady income, sound health, a loving and soft-spoken wife : an obedient son and knowledge tht can help in earning wealth.

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

राजन्! नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेशमें न रहना, अच्छे लोगोंके साथ मेल होना, अपनी वृत्तिसे जीविका चलाना और निडर होकर रहना—ये छः मनुष्यलोकके सुख हैं।

Rajan! There are six situations in which one is happy-1. Freedom from sickness, 2. Freedom from debt, 3. Not living away from one's home, 4. Company of noble persons, 5. Living on one's own earnings and 6. Leading a fearless life.

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः
पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं
न सेवते यश्च सुखी सदैव॥

जो निरर्थक विदेशवास, पापियोंसे मेल, परस्त्रीगमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है।

A person is always happy if he avoids unnecessary travel, companionship of men of easy virtue, if he does not covet another man's wife, shuns the evils of falsehood, arrogance, and hypocrisy, does not steal, back-bit or consume liquor.

दानं होमं दैवतं मंगलानि
प्रायश्चित्तान् विविधाँल्लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि
तस्योत्थानं देवता राधयन्ति॥

जो दान, होम, देवपूजन, मांगलिक कर्म, प्रायश्चित्त तथा अनेक प्रकारके लौकिक आचार—इन नित्य किये जानेयोग्य कर्मोंको करता है, देवतालोग उसके अभ्युदयकी सिद्धि करते हैं।

The Devatas pray for the properity of the person who gives charity, performs Havana, worships gods, performs auspicious deeds, repents for his mistakes or omissions, and daily attends to the most desirable activities.

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः
करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्त-
मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥

जो सज्जन पुरुषोंसे आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्तिके अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुषको शीघ्र ही सुयशकी प्राप्ति होती है, क्योंकि सन्त जिसपर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है।

A man soon gains name and fame if he, respected by other noble persons, unattached, acting within his limits, tries to atttain his objective. He is always happy [and successful] who is blessed by the saints.

[विदुरनीति १।८७, ९४,११३,१२१, अ.८।१]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिमें ३।२ बजेतक	शुक्र	पू०भा० सायं ६।३२ बजेतक	१ सितम्बर	**मीनराशि** दिनमें १२।५५ बजेसे।
तृतीया ,, १२।५७ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ५।७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१ बजेसे रात्रिमें १२।५७ बजेतक, **कजरीतीज, मूल** सायं ५।७ बजेसे।
चतुर्थी ,, ११।८ बजेतक	रवि	रेवती दिनमें ३।५८ बजेतक	३ ,,	**मेषराशि** दिनमें ३।५८ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थी-व्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।३६ बजे, **पंचक समाप्त** दिनमें ३।५८ बजे।
पंचमी ,, ९।४१ बजेतक	सोम	अश्विनी ,, ३।१० बजेतक	४ ,,	**मूल** दिनमें ३।१० बजेतक।
षष्ठी ,, ८।३५ बजेतक	मंगल	भरणी ,, २।४१ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।३५ बजेसे, **वृषराशि** रात्रिमें ८।४१ बजेसे, **हलषष्ठी (ललहीछठ)**।
सप्तमी ,, ७।५८ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, २।३९ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१६ बजेतक, **श्रीकृष्णजन्माष्टमी-व्रत (सबका)**।
अष्टमी ,, ७।५२ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ३।७ बजेतक	७ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ३।३६ बजेसे, **गोकुलाष्टमी, उदयकालीन रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्म-व्रत।**
नवमी ,, ८।१८ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा दिनमें ४।६ बजेतक	८ ,,	× × × × ×
दशमी ,, ९।१३ बजेतक	शनि	आर्द्रा सायं ५।३७ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।४५ बजेसे रात्रिमें ९।१३ बजेतक।
एकादशी ,, १०।३६ बजेतक	रवि	पुनर्वसु रात्रिमें ७।३० बजेतक	१० ,,	**कर्कराशि** दिनमें १।२ बजेसे, **जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १२।२१ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ९।४६ बजेतक	११ ,,	**मूल** रात्रिमें ९।४६ बजेसे।
त्रयोदशी ,, २।२१ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, १२।१८ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।२१ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें १२।१८ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिशेष ४।२५ बजेतक	बुध	मघा ,, २।५४ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।२३ बजेतक, **मूल** रात्रिमें २।५४ बजेतक।
अमावस्या अहोरात्र	गुरु	पू०फा० रात्रिशेष ५।२७ बजेतक	१४ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या, उत्तराफाल्गुनीका सूर्य** रात्रिमें ६।४९ बजे, **कुशोत्पाटनी अमावस्या।**
अमावस्या प्रातः ६।२६ बजेतक	शुक्र	उ०फा० अहोरात्र	१५ ,,	**कन्याराशि** दिनमें १२।३ बजेसे, **अमावस्या।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरद-ऋतु, भाद्रपद मास-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८।१० बजेतक	शनि	उ०फा० प्रातः ७।४६ बजेतक	१६ सितम्बर	× × × × ×
द्वितीया ,, ९।३१ बजेतक	रवि	हस्त दिनमें ९।४४ बजेतक	१७ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १०।२९ बजेसे, **कन्यासंक्रान्ति** रात्रिशेष ४।५५ बजे, **शरद-ऋतु प्रारम्भ, विश्वकर्मा-जयन्ती।**
तृतीया ,, १०।२७ बजेतक	सोम	चित्रा ,, ११।१५ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।४० बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थी-व्रत, हरतालिका-व्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।**
चतुर्थी ,, १०।५३ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, १२।१७ बजेतक	१९ ,,	**ऋषिपंचमी, भद्रा** दिनमें १०।५३ बजे तक।
पंचमी ,, १०।४६ बजेतक	बुध	विशाखा ,, १२।४७ बजेतक	२० ,,	**वृश्चिकराशि** प्रातः ६।४० बजेसे।
षष्ठी ,, १०।१० बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, १२।५० बजेतक	२१ ,,	**लोलार्कषष्ठीव्रत, मूल** दिनमें १२।५० बजेसे।
सप्तमी ,, ९।६ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, १२।२४ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।६ बजेसे रात्रिमें ८।२२ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें १२।२४ बजेसे, **राधाष्टमीव्रत।**
अष्टमी प्रातः ७।३८ बजेतक	शनि	मूल ,, ११।३८ बजेतक	२३ ,,	**मूल** दिनमें ११।३८ बजेतक।
दशमी रात्रिमें ३।४६ बजेतक	रवि	पू०षा० ,, १०।२९ बजेतक	२४ ,,	**महारविवारव्रत, मकरराशि** दिनमें ४।८ बजेसे।
एकादशी ,, १।३० बजेतक	सोम	उ०षा ,, ९।६ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें २।३८ बजेसे रात्रिमें १।३० बजेतक, **पद्मा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ११।७ बजेतक	मंगल	श्रवण प्रातः ७।३३ बजेतक	२६ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ६।४३ बजेसे, **वामनद्वादशी-व्रत, पंचकारम्भ** रात्रिमें ६।४३ बजे।
त्रयोदशी ,, ८।४१ बजेतक	बुध	शतभिषा रात्रिशेष ४।१३ बजेतक	२७ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ६।१७ बजेतक	गुरु	पू०भा० रात्रिमें २।३७ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** सायं ६।१७ बजेसे रात्रि शेष ५।९ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ९।१ बजेसे, **अनन्तचतुर्दशीव्रत, व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा सायं ४।२ बजेतक		उ०भा० ,, १।४० बजेतक	२९ ,,	**पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

(१)

गणेशजीकी कृपा

सन् २००५ की घटना है—सावनका महीना, रक्षा-बन्धनका पर्व, पूर्णिमाका दिन, समय दो बजे दोपहर। पत्नीने कहा कि भाईको राखी बाँधना है। इसलिये हमें हीरो पुक गाड़ीपर बिठाकर हमारे भैयाके यहाँ ले चलो। हमने कहा कि अपनी सभी पुत्रियाँ घर आयेंगी। तुम मायके अपने घर चली जाना, परंतु पत्नीने कहा कि अभी तो दो बज रहे हैं। चलो, दो-तीन घंटेमें तो वापस आ जायँगे। वे सभी तो शामतक आती हैं। मैंने कहा अच्छा भाई, चलो चलते हैं। फिर हम तैयार हो चल दिये। हमारे यहाँसे पत्नीका पीहर करीब २० किलोमीटर दूर है।

अभी थोड़ी दूर ही चले थे कि कुछ घने बादलके टुकड़े देख मैंने पत्नीसे कहा कि लगता है कि बरसात होनेवाली है, तो पत्नीने कहा कि तुम्हें तो मेरे पीहर न चलनेका कोई बहाना चाहिये। बहरहाल करीब तीन बजे हमलोग वहाँ पहुँच गये। पत्नीने अपने भाईको राखी बाँधी। पूर्णिमाका व्रत था। हमारे साले साहबकी पत्नीने आग्रह किया कि व्रतका यहाँपर ही पारायणकर जाना। भोजन बना। इधर कुछ ही क्षणों पश्चात् बरसात शुरू हो गयी। जल्दीसे भोजन किया। फिर पत्नीसे कहा कि चलो भई! जल्दीसे चलो; क्योंकि बरसात बहुत हो जायगी तो घर पहुँचना मुश्किल हो जायगा। फिर हम पति-पत्नी बरसते पानीमें ही रवाना हुए। वहाँसे नेवड़ नामक गाँव तकरीबन ६ किलोमीटर दूर है। वहाँपर हम करीब ५ बजे शामतक पहुँच गये। उस स्थानपर एक बड़ा नाला है और उसपर एक छोटी-सी पुलिया बनी हुई है। बरसातके पानीकी वजहसे पुलियासे लगभग तीन फुट ऊपरसे पानी ओवरफ्लो हो रहा था। ऐसी स्थितिमें पुलियाके ऊपरसे कोई भी वाहन जाना असम्भव-सा हो गया था। ऐसा नजारा देखकर हमलोग घबरा गये कि अब कैसे घर पहुँच पायेंगे। नेवड़ गाँवके सरपंच हमारे जान-पहचानवाले थे। मैंने उनसे मिलना उचित समझा। मैं उनके पास पहुँचा और निवेदन किया कि किसी भी प्रकार हमें पुलिया पार करवायें। वे बेचारे अपने पुत्रोंके साथ हमारी मददको आये और कुछ समय पानी घटनेका इन्तजार करके जब थोड़ा पानी घट गया तो हम उनकी मददसे पुलिया पार कर पाये और फिर आगे बढ़े। फिर लगभग शाम साढ़े छः बजे गाँव मालखेड़ा पहुँचे, वहाँपर भी एक नाला पड़ता है। वहाँकी भी स्थिति पहले-जैसी ही थी। पुलियाके तरफ बहुत सारे वाहन आते और वह भयावह स्थिति देख वापस लौट जाते। वहाँपर लोगोंकी भीड़ लगी थी, परंतु कोई उसे पार कर पानेमें समर्थ नहीं था। तभी एक व्यक्ति साइकिलद्वारा पहुँचे, उन्हें वहाँके लोग मास्टरजी नामसे सम्बोधित कर रहे थे। वे अपनी साइकिल उठाकर पुलिया पार करने लगे। चूँकि पानीका बहाव तीव्र था, सो वहाँ उपस्थित लोग उन्हें मना करने लगे कि वे ऐसा न करें, पानी ज्यादा है। परंतु मास्टरजी बोले—'अरे भाइयो, घबराओ मत, मैं प्रायः इस स्थितिमें ऐसे ही पारकर चला जाता हूँ। मुझे इसका अभ्यास है।' बहावकी तीव्रतामें भी वे बढ़ चले, परंतु अभी वे लगभग आधी पुलिया पार कर पाये होंगे कि उनके कदम लड़खड़ाने लगे। यह देख लोग चिल्लाने लगे—'अरे मास्टरसाहब, साइकिल छोड़ दो।' परंतु उन्होंने एक न सुनी और वे थोड़ी ही देरमें साइकिलसहित बह गये और सभीकी नजरोंसे ओझल हो गये।

इस समय रात्रिके करीब ८ बज चुके थे। बरसात निरन्तर हो रही थी। यह घटना देख हम तो काँप गये। अब तो समझमें नहीं आ रहा था कि इतनी रातमें कहाँ जायँ। इस गाँवमें कोई परिचय भी नहीं था। वहाँ १०-१२ की संख्यामें कुछ नौजवान लड़के थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि आपलोग किसी प्रकार मेरी गाड़ी पार करवा दें। वे लोग बड़ी मेहनतसे मेरी गाड़ी पुलियासे पार करा दिये परंतु पार करनेपर जब मैंने गाड़ी स्टार्ट करनी चाही तो वह स्टार्ट नहीं हुई। ऐसा लगा कि साइलेंसर एवं पेट्रोल टंकीमें पानी चला गया है। अब इतनी रातमें आगेका रास्ता कैसे तय होगा, समझमें नहीं आ रहा था। कुछ किलोमीटर उस

घने अँधेरेमें पैदल चलने लगे। कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था। हमारी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। बादलोंकी गड़गड़ाहट और बिजलीकी कड़कके बीच बारिशमें भी जाते हुए हमें कोई आश्रय नहीं था। मैं बचपनसे ही भगवान् गजानन गणेशजीको अपना गुरु मानता हूँ। ऐसे संकटके समय मैंने आर्त होकर उन्हीं विघ्नविनायककी प्रार्थना शुरू कर दी। हम दोनों पैदल ही हीरोपुक खींचते और भागते जा रहे थे। सहसा तीव्र विद्युत् प्रकाशके साथ बादलकी गरज सुनायी दी और उसी प्रकाशमें सड़कके किनारे एक चबूतरेपर भगवान् श्रीगणेशजीकी एक मूर्ति दिखायी दी। हम वहीं चबूतरेपर गाड़ी रोककर बैठ गये और भगवान्से प्रार्थना करने लगे कि हे गणेशजी! हमें किसी प्रकार सकुशल घर पहुँचा दो। इस प्रकार प्रार्थनाकर गाड़ी स्टार्ट करनेकी कोशिश की। भगवान् श्रीगजाननकी कृपासे गाड़ी तो स्टार्ट हो गयी परंतु गाड़ीकी लाइट नहीं जल रही थी। बहरहाल धीरे-धीरे हम दोनों गाड़ीपर बैठकर आगे बढ़े। बरसात लगातार हो रही थी, बिजली भी चमक रही थी, बादलोंके गर्जनसे हम दोनों अत्यधिक डर जाते थे। जब बिजली चमके तो कुछ दूरीतक रास्ता दृष्टिगत हो जाता था, परंतु दूरतक कोई नहीं दिख रहा था। अभी भी घर पहुँचना बहुत कठिन लग रहा था। हमारे पास मोबाइल भी नहीं था कि हम घरपर किसीको सूचित कर सकते। पत्नीने जेवर भी पहन रखा था, लेकिन हम दोनों पति-पत्नी गजाननका जप करते-करते घर सकुशल पहुँच गये। पहुँचनेपर ऐसा लगा कि जैसे भगवान् हमारे साथ-साथ चल रहे थे। क्योंकि जितनी बाधाएँ थीं, उन बाधाओंको पारकर इतनी सफलतापूर्वक पहुँचना हमारे वशकी बात नहीं थी। निश्चित ही विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेश प्रतिपल हमारे साथ थे। वास्तवमें ऐसी कठिन परिस्थिति आनेपर ही मनुष्य इस प्रकार भगवान्का स्मरण कर पाता है, तभी तो भगवान् भी कठिनाइयोंको दूरकर हमें विपरीत स्थितिसे उबार देते हैं और ये बातें ही कृपानुभूति-जैसी प्रतीत होती हैं एवं दूसरोंको भी भगवान्के अस्तित्वका आभास कराती हैं। [श्रीरामचन्द्रजी 'बैरागी']

(२)

भगवतीने सर्वथा रक्षा की

घटना ४ अप्रैल, सन् २०११ ई० की है। चैत्र मासका प्रथम नवरात्र (नव सम्वत्सर)-का आरम्भ था। प्रतिवर्षकी तरह मेरे पति प्रातः घट-स्थापन तथा पावन अखण्ड ज्योति प्रज्वलितकर नवरात्रकी विशेष पूजा सम्पन्नकर ऑफिसके लिये प्रस्थित हुए। ऑफिससे मात्र १५ मिनटकी दूरी शेष रह गयी थी। एक चौराहेपर अचानक एक कैब (मारुति वैन) बड़ी द्रुत गतिसे सामनेसे आ रही थी। एकाएक कैबको तीव्रतासे अपनी ओर आते हुए देखकर भगवतीकी प्रेरणासे मेरे पति स्टेयरिंग घुमाते चले गये और माँकी कृपासे इतना अच्छा हुआ कि दूसरी ओरसे भी उस समय किसी वाहनका आवागमन नहीं हुआ। भगवतीकी ये प्रेरणा उस समय ऐसी प्रतीत हुई, जैसे कि उन्होंने स्वयं हाथ पकड़कर खींच लिया हो और सबकी सर्वथा रक्षा की हो। गाड़ीके सामनेका हिस्सा यद्यपि काफी क्षतिग्रस्त हुआ था, लेकिन उस समय गाड़ीमें विद्यमान चारों लोग उन करुणामयी माँकी छत्र-छाया एवं सुरक्षा-चक्र स्वरूप पूर्णतया सुरक्षित रहे, किसीको एक खरोंचतक नहीं आयी।

इस घटनाके बाद मानस-पटलपर बहुत-सी आशंकाएँ उभरने लगीं, मनमें विचारोंका द्वन्द्व छिड़ गया कि क्या ये नवरात्रकी प्रारम्भिक पूजा-अर्चनामें अनजानेमें हुए किसी अपराधका दण्ड है। (यद्यपि वह सब तो सर्वदाकी भाँति ही किया था) या भगवतीने बहुत बड़ा ग्रह-संकट इस प्रकारसे टाला है? गत वर्ष सन् २०१० ई० के चैत्र नवरात्रमें ही तो भगवतीने अपनी कृपा-स्वरूप ये छोटा-सा वाहन दिया था।

यह घटना जीवनमें भगवतीकी कृपाका एक ऐसा रोमांचित कर देनेवाला अविस्मरणीय सुखद अनुभव है, जिसको आजीवन स्मरण रख उनके चरणोंमें नत-मस्तक होते रहेंगे।

कोटि-कोटि नमन उन सच्ची जगज्जननीको।

[श्रीमती वन्दनाजी शर्मा]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवान्‌का अनपढ़ भक्त किसान

एक किसान था। बहुत गरीब था। लेकिन सच्चा-ईमानदार था। उसने अपने गाँवके एक बनियेके पाससे कुछ रुपये कर्ज लिये थे। बादमें कर्ज लिये गये रुपयोंको उसने कभी पाँच सौ, कभी हजार और कभी दो हजार करके सारी रकम चुका दी थी, परंतु रुपये चुकानेकी रसीद नहीं ली; क्योंकि वह अनपढ़ था।

बादमें बनियेकी नीयतमें खोट आ गया, उसने दो साल बाद कोर्टमें केस दर्ज कराया कि किसानने मेरे पैसे चुकता नहीं किये हैं। कोर्टमें केस हुआ, दोनोंको समन भेजा गया। दोनों नियत तारीखको हाजिर हुए। न्यायमूर्तिने बनियेसे पूछा—तुम्हारी क्या फरियाद है ? बनियेने कहा—हुजूर! इस किसानने मुझसे रुपये कर्ज लिये थे, काफी समय हो गया, पर अभीतक एक भी पैसा नहीं चुकाया है। किसानसे भी पूछा गया—तुमने इस बनियेसे कर्ज लिया था, और यदि लिया था तो चुकाया क्यों नहीं? किसानने कहा—मालिक! मैंने जो रुपये कर्जमें लिये थे वे रुपये तथा उन रुपयोंके ब्याजकी एक-एक पाई मैंने चुका दी है। न्यायमूर्तिने प्रश्न किया कि 'क्या तुम्हारे पास पैसे चुका देनेकी रसीद या कोई कागजात है ?' किसानने उत्तर दिया—साहब! मैं ठहरा अनपढ़ आदमी, मैंने तो इनके विश्वासपर रुपये लिये तब भी मैंने नहीं जाना कि इन्होंने क्या लिखा-पढ़ी की और चुकानेके बाद भी मैंने कोई रसीद आदि नहीं ली। हम गरीब लोग तो ऐसे ही विश्वासपर लेन-देन करते हैं साहब! किसानके इस सरलताभरे उत्तरको सुनकर न्यायाधीशने मन-ही-मन सोचा कि किसान निर्दोष है, परंतु यह बनिया इसे फँसा रहा है। न्यायाधीशने किसानसे फिर पूछा—तुम्हारा कोई साक्षी है ? किसान भगवान्‌का भक्त था, सो उसने कहा—साहब मेरे साक्षी तो रामजी हैं? इसपर न्यायाधीशने कहा—ठीक है, कल अपने साक्षीको लेकर आओ।

अगले दिन किसान और बनिया पुन: हाजिर हुए। किसानके साथ तो कोई साक्षी था नहीं, वह कहाँसे भगवान् रामको लाता, फिर भी उसके मनमें यह विश्वास था कि मेरे रामजी साक्षी बनकर जरूर आयेंगे। इधर बनिया मन-ही-मन बहुत प्रसन्न था कि आज इस किसानको तो अपने कहेका फल जरूर मिलेगा। बहरहाल केस शुरू हुआ। किसानसे बार-बार कहा जाने लगा—तुम्हारे रामजी कहाँ हैं ? किसान मौन हो बाहर दरवाजेकी ओर ही ताकता जा रहा था। तभी एक व्यक्ति वहाँ आया, उसके कपड़े मैले थे। देखनेमें वह किसानकी तरह लग रहा था। उसने अपना नाम रामजी बताते हुए उस बनिये एवं किसानके लेने-देनका अपनेको साक्षी बताया तथा उसने जिस-जिस दिन किसानद्वारा कर्ज अदा किया गया था, उसकी तारीख, दिन सभी कुछ बता दिया। अब बनिया एकदम-से घबरा गया। न्यायाधीशको भी समझते देर न लगी और उन्होंने किसानको निर्दोष कहते हुए बनियेको सजा सुनायी। फिर शीघ्र ही वे स्वयं रामजी नामक उस व्यक्तिसे मिलनेके लिये बाहर आये, परंतु वह व्यक्ति कहीं नहीं दिखा। वे समझ गये कि इस ईमानदार किसानके लिये भगवान् श्रीराम वेष बदलकर स्वयं साक्षी बने। यह सोचकर वे भाव-विभोर हो गये और वे उसी समय अपने पदसे इस्तीफा देकर गंगा किनारे जाकर रहने लगे। चार-पाँच वर्षके बाद उनका स्वर्गवास हो गया। [**श्रीकिशोरजी रणछोड़ भाई**]

(२)

वफादारी एवं ईमानदारी मनुष्यका धर्म है

प्राचीन बड़ौदा राज्यमें एक भले अमलदारका नाम था श्री एस० आर० शिंदे। नौकरीके अन्तिम दिनोंमें वे मेहसानेके डिस्ट्रिक्ट जज थे। वे बहुत ईमानदार एवं स्पष्टवक्ता थे।

स्व० सयाजीराव महाराजके हृदयमें श्रीशिंदेकी कद्र थी। महाराजा जब-जब विदेश जाते थे, अपने निजी मन्त्रीके रूपमें वे श्रीशिंदेको अपने साथ ले जाते थे। किंतु श्रीशिंदे स्पष्टवादी एवं सत्यवक्ता होनेके कारण अन्य मन्त्रियोंके समान विशेष आर्थिक लाभ नहीं उठा सके।

एक बार महाराजाने फ्रांसके पेरिस नगरमें ठहरकर एक बड़े जौहरीकी दूकानसे बहुमूल्य जवाहरात खरीदे। दूसरे दिन दूकानका एक प्रतिनिधि श्रीशिंदेसे मिला और उसने उनसे पूछा—'आपका कमीशन नगद दिया जाय या चेकसे ?'

श्रीशिंदे ऐसी बातोंके अभ्यस्त नहीं थे। अत: उन्होंने आश्चर्यसे प्रश्न किया—'मेरा कमीशन? किस बातका?'

दूकानका प्रतिनिधि कुशल व्यक्ति था। वह समझ गया कि मैं किस आदमीसे बातें कर रहा हूँ। अत: उसने बड़े विनयसे कहा—'साहब! आपको इस बातका बुरा नहीं मानना चाहिये। सराफोंकी दूकानोंमें यही रिवाज है कि अच्छे ग्राहक लानेवालेको कमीशन दिया जाता है और उसे सभी लोग बिना संकोच ले लेते हैं। कमीशनके ऊपर तो आपका हक होता है।'

'आपका रिवाज जो भी हो', श्रीशिंदेने कहा—'किंतु मैं सरकारका कर्मचारी हूँ, मैं इसे नहीं ले सकता।'

'कमीशन स्वीकार करनेसे महाराजाको कोई नुकसान नहीं पड़ता और न अस्वीकार करनेसे उन्हें कोई फायदा होता है।' प्रतिनिधिने परिस्थिति स्पष्ट करते हुए कहा। 'यह तो हमारी दूकानकी परिपाटी है। मैं यह बात आपके महाराजाके समक्ष स्पष्ट भी कर सकता हूँ।'

'आप कृपया ऐसा न करें। आप इस कमीशनको काट करके ही अपना बिल बना दीजिये, यह कमीशन ग्राहकको ही मिलना चाहिये न कि साथमें आनेवालेको।'—श्रीशिंदेने अपना निर्णय बता दिया।

'अच्छी बात है'—प्रतिनिधि बोला। 'अगर आपकी ऐसी ही इच्छा है तो ऐसा ही किया जायगा; किंतु आप इतना बड़ा स्वार्थत्याग कर रहे हैं। आपकी ईमानदारीकी सूचना मैं महाराजाके कानतक पहुँचाऊँ तो आपको कोई हर्ज तो नहीं?'

'देखो, भाई!' श्रीशिंदेने उत्तर दिया। 'वफादारी एवं ईमानदारी मनुष्यका धर्म है और धर्म कोई प्रदर्शन या प्रचारकी वस्तु नहीं है।' 'और दूसरी बात' थोड़ी देर रुककर श्रीशिंदेने कहा—'हमारे महाराजा यह बात जानकर भूतकालीन अधिकारियोंके प्रति शंका करेंगे। उस जाँच-पड़तालमें मेरे किसी पूर्ववर्ती निर्दोष अधिकारीको हैरान होना पड़ सकता है। अत: इस प्रश्नको यहीं दबा दें।'

'वाह, वाह!' नतमस्तक होकर वह प्रतिनिधि बोला—'भारतवर्षमें ऐसे व्यक्ति भी रहते हैं, जो धर्मके लिये इतनी बड़ी रकमको भी ठोकर लगा सकते हैं तथा उस त्यागका परिचय अपने मालिकको भी नहीं देते।'

श्रीशिंदेको वन्दन करके प्रतिनिधि विदा हुआ। 'अखण्ड आनन्द' [**श्रीविजयकुमारजी त्रिवेदी**]

(३)

आदर्श शिक्षक

घटना कुछ पुरानी है। अल्पवयस्क एक विद्यार्थी स्कूलसे छूटकर अपने साथियोंके साथ पेड़के ऊपर चढ़कर खेल रहा था। पेड़की ऊँची डालसे वह एकाएक गिर पड़ा और दैववशात् उसकी दोनों आँखें हमेशाके लिये जाती रहीं। बालकके अन्धे हो जानेसे उसके माता-पिताकी वेदनाका पार नहीं था।

स्कूलके मुख्य आचार्यको जब इस घटनाकी सूचना मिली, तब वे दौड़कर विद्यार्थीके पास पहुँचे। विद्यार्थीने रोते हुए कहा—'गुरुजी! अब मैं पढ़ नहीं सकूँगा।'

'अरे मेरे पागल बच्चे!'—हँसते-हँसते आचार्य बोले—'तू क्यों नहीं पढ़ सकेगा, मैं जो बैठा हूँ?' मैं तुझे अवश्य पढ़ाऊँगा।'

विद्यार्थीका चेहरा खिल उठा। आचार्यजीके ये शब्द केवल आश्वासनके लिये नहीं थे। आचार्यजी स्वयं रातको जागकर ब्रेललिपि (नेत्रहीनोंकी पढ़ने-लिखनेकी कला) सीखने लगे। प्रतिदिन रातको अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधकर दो-तीन घण्टे वे ब्रेललिपिमें लिखी पुस्तकें पढ़नेका अभ्यास करने लगे। कुछ ही दिनोंमें वे उस लिपिके अभ्यस्त हो गये। अब वे प्रात: दस बजेसे उस विद्यार्थीको स्वयं स्कूलमें ले जाकर पढ़ाने लगे। एक-दो-तीन, नहीं पूरे सात वर्ष परिश्रम करके उन्होंने उसको एस०एल०सी०की परीक्षा पास करवा दी। इसके पश्चात् वह विद्यार्थी लगनसे पढ़ता रहा। कुछ ही वर्षोंमें उसने इण्टरमीडिएट, बी०ए० और एम०ए०की परीक्षाएँ पास कर लीं और अन्तमें वह पी-एच०डी० हो गया।

वही अन्ध विद्यार्थी अन्धजनोंकी हितकारिणी समितिका अधिकारी बन गया तथा वे आचार्य सच्ची लगन एवं कर्तव्यके आदर्श शिक्षक बन गये। [**श्रीगुणवन्तरायजी आचार्य**]

(४)

इच्छा-मृत्यु

घटना लगभग ६० वर्ष पूर्वकी है, मेरी पूजनीया दादीजी अनन्य ईश्वरभक्त एवं पतिव्रतपरायण थीं। मैंने स्वयं देखा है और सम्पूर्ण दृश्य आज भी मेरे सम्मुख है

कि हमारे बाबा प्रातः चार बजे उठकर बाहरसे भीतर बरोठेमें जैसे ही आते, दादीजी उनके पैरके अँगूठेका चरणोदक लेती थीं। पूजा-पाठ नियमसे करना, गाँव-मुहल्लेका कोई स्त्री-पुरुष घर आये तो दानस्वरूप कपड़ा, भोजन और दवाइयाँ देना उनके जीवन-चर्याका अभिन्न अंग था।

घटना यह हुई कि दादीजी जब अस्वस्थ हुईं तो ऐसा लगता था कि बचेंगी नहीं। दवा-इलाज होता रहा। उन्होंने पण्डितजीको बुलाया और पूछा सूर्य उत्तरायण कब होंगे? पण्डितजीसे उत्तर मिला कि दो माह बाद। धीरे-धीरे उनके स्वास्थ्यमें सुधार हुआ और वे तीन-चार दिनोंमें पूर्णतया स्वस्थ हो गयीं।

दो माह बीतनेके बाद जनवरी माहके अन्तमें एक दिन बड़े प्रातः दादीजीने मेरी माँको बुलाकर कहा कि जल्दी पूरे परिवारके लिये भोजन बनवाओ। माँ आश्चर्यचकित हो प्रयोजन पूछने लगीं। इसपर उन्होंने कहा कि हम जैसा कहते हैं बस, करती जाओ। मेरी माँने सदैव उनकी सेवा की थी एवं उनकी आज्ञाका पालन किया था। उन्होंने उस दिन भी उनके वचनोंको शिरोधार्य किया।

दादीजीके आज्ञानुरूप भोजन तैयार हुआ। परिवार, खानदानके सभी लोगोंको अपने पास बुलानेके आदेशका भी पालन हुआ। दादीजीने कहा कि आँगनमें गायके गोबर एवं गंगाजलसे लिपाई करो और कुशा बिछाओ। परिवारके सदस्य इकट्ठा हो चुके थे। दादीजीके इच्छानुसार सबने भोजन भी किया। इसके बाद पूज्य बाबाजीके जाँघपर सर रखकर उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की कि कोई भी रोयेगा नहीं, सब लोग कोई रामायण, कोई गीता, कोई भजन गाओ। साथ ही मेरे मुँहमें गंगाजल, तुलसीदल डालते रहो।

उन्होंने जैसे समयको अपने वशमें कर रखा था। सबसे उल्लेखनीय बात यह कि अन्त समयमें माया-मोहकी बात न कर उन्होंने ईश्वरका नाम लेकर प्राण त्यागे। दादीजीके प्रतापका स्मरणकर मुझे आज भी रोमांच हो आता है।

[श्रीसत्यदेवजी पाण्डेय]

(५)

ईमानदारी अब भी शेष है

घटना ११ अप्रैल सन् २००५ की है। मैं अपनी कन्याओं तथा सासके साथ असमसे चलकर अपने पैतृक गाँव जानेके लिये अलीनगर बस-पड़ावतक पहुँचा। वहाँसे गाँव निकट पड़ता था, मैंने एक जीप भाड़ेपर ले ली। बस-पड़ावपर कुछ ग्रामीण श्रमिक, जो परदेशसे आये थे, मिल गये। मैंने उनको भी जीपमें बिठा लिया। मेरे निवासस्थानसे कुछ ही दूरीपर एकको छोड़ बाकी श्रमिक उतर गये। अपने निवासस्थानपर पहुँचकर हम भी उतर गये और वह मजदूर भी वहीं उतर गया। उतरते समय संयोगसे एक छोटी-सी अटैची, जो मेरी सासकी थी, जीपमें ही छूट गयी। संयोगवश मेरी सासने भी ख्याल नहीं किया।

अगले दिन प्रातःकाल जब सामानकी आवश्यकता हुई तो अटैचीकी खोज की गयी, किंतु वह मिली नहीं। हमलोग बहुत चिन्तित हो गये। उस अटैचीमें कुल मिलाकर पाँच-छः हजारका सामान था। मैंने इस बातका अपने छोटे भाईसे जिक्र किया। पहले तो श्रमिकोंपर संदेह ठहरा, परंतु फिर ध्यान आया कि अटैची जीपकी पिछली सीटपर ही रह गयी थी और हमलोग उतरते समय उतारना भूल गये।

चूँकि जीपड्राइवर मेरे भाईके पहचानका था, अतः अलीनगर जाकर पूछताछ की गयी। पता चला कि जीपड्राइवरने अटैची अपने मालिककी दूकानपर रखकर उन्हें बता दिया कि अमुक गाँवके अमुक बाबूके परिवारकी अटैची है।

जीपमालिककी दूकानपर पहुँचकर मेरे भाईने अटैचीको प्राप्त किया। यदि जीपड्राइवरकी नीयत डोल गयी होती तो हमें कितना अपयश होता, किंतु ऐसा समझना तो हमलोगोंकी भूल ही होती। आजके समयमें जबकि सर्वत्र बेईमानी, झूठ, लूट-खसोटका माहौल चल रहा है, कुछ ईमानदार लोग भी हैं, जो अपनी ईमानदारी नहीं छोड़ते, इसीलिये यह कहना ठीक ही है कि ईमानदारी अब भी शेष है। [श्री एन्० ठाकुर]

मनन करने योग्य

'पितृदेवो भव'

तिब्बतके कलियांग प्रान्तके एक गाँवमें वानचुंग नामक एक व्यक्ति रहता था। वह बहुत ही बुद्धिमान् था। उसकी पत्नी मर चुकी थी। उसका एक पुत्र था, जिसका नाम था—सानचुंग। दोनों कृषि करके अपना गुजारा करते थे। उन दिनों वहाँके राजाकी ओरसे एक नियम बना हुआ था, जिसके अनुसार जब व्यक्ति बूढ़ा हो जाता, कुछ काम न कर सकता तब उसे पहाड़ोंपर ले जाकर अकेले छोड़ दिया जाता था, जहाँ वह भूख-प्यास और बीमारीसे कुछ समय बाद मर जाता था अर्थात् वृद्धजनोंको घरसे निकालकर मरनेके लिये छोड़ दिया जाता था। धीरे-धीरे वानचुंग बूढ़ा हो गया और कार्य करनेयोग्य नहीं रहा। राजाके नियमानुसार सानचुंगने अपने पिताको पीठपर लादा और पहाड़की ओर चल पड़ा। वानचुंग अपने पुत्रसे बहुत प्यार करता था। उसको चिन्ता थी कि कहीं पुत्र लौटते समय राह न भटक जाय, इसलिये पुत्रकी पीठपर बैठे-बैठे ही वह रास्तेमें पड़नेवाले पेड़ोंकी टहनियाँ तोड़-तोड़कर जमीनपर गिराता गया ताकि सानचुंग उन टहनियोंको देखता-देखता सकुशल घर वापस लौट सके।

पिताके लिये झोपड़ी बनाकर उसमें बिठाकर पुत्र बोला—पिताजी! मुझे अब जानेकी आज्ञा दीजिये। वानचुंगने कहा—बेटा! तुम कहीं रास्ता न भूलो और परेशान हुए बिना समयसे घर पहुँचो, इसलिये मैं सारे रास्तेमें पेड़ोंकी टहनियाँ तोड़कर गिराता आया हूँ। उन्हें देखते-देखते तुम घर पहुँच जाना। पिताका अपने प्रति अगाध प्रेम देखकर सानचुंगकी आँखोंमें आँसू आ गये। सानचुंग घर तो आ गया, किंतु पिताकी अनुपस्थितिमें उसका मन नहीं लग रहा था। एक दिन उसका पितृ-प्रेम उमड़ पड़ा और वह पहाड़पर गया तथा पिताको पीठपर लादकर चुपचाप घर ले आया। राजाको इस बातका पता न चल सके, इसलिये सानचुंगने अपने पिता वानचुंगको एक गुफामें छिपा दिया तथा उनकी देख-रेख एवं भोजन आदिकी सभी सेवा करता रहा। वह पिताको देवताके समान समझकर उनकी सेवा कर रहा था।

एक दिन तिब्बतके राजाने बुद्धिमान् व्यक्तिकी खोज करनेहेतु घोषणा की कि जो राखकी रस्सी बनाकर लायेगा उसे काफी धन पुरस्कारमें दिया जायगा। सानचुंगने यह बात अपने पिताको बतायी, वानचुंगने सोचकर कहा—यह कोई कठिन काम नहीं है। एक रस्सी खूब कसी हुई बनाओ, उसे एक तख्तेपर जला डालो—राखकी रस्सी तैयार हो जायगी।

सानचुंगने अपने बूढ़े पिताकी बुद्धिका उपयोगकर वैसा ही किया और दरबारमें तख्तेपर 'राखकी रस्सी' बनाकर ले गया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सभी दरबारी भी उसकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा करने लगे। सानचुंग बहुत-सा धन लेकर अपने गाँव वापस आया और अपने पिताको सारी बात बतायी।

कुछ समय बाद राजाने सानचुंगकी बुद्धिकी पुनः परीक्षा लेनेहेतु एक ऐसी ढोलक बनानेका आदेश दिया—जो बिना बजाये बजे।

सानचुंगने अपने पितासे इस बारेमें सलाह ली। पिताने कहा—लकड़ी एवं चमड़ा खरीद लाओ और जंगलमेंसे मधुमक्खियोंसहित एक छत्ता ले आओ। सानचुंगने पिताकी सलाहसे ऐसा ही किया। उसके पिता वानचुंगने लकड़ीकी ढोलक बनायी और मधुमक्खियोंके छत्तेको उसके अन्दर रखकर ऊपरसे चमड़ा मढ़कर कहा—'अब इसे राजाके पास ले जाओ; यह अपने-आप बिना बजाये बजेगी।'

सानचुंग राजाके पास वह ढोलक लेकर गया, जैसे ही राजाने ढोलक हाथमें ली, हिलने-डुलनेसे उसके अन्दर बन्द मधुमक्खियाँ इधर-उधर उड़ीं और चमड़ेसे टकरायीं, जिसके कारण ढोलक अपने-आप बजने लगी। राजा यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे पुरस्कार देकर पूछा—तुमने इतने कठिन प्रश्नोंका हल कैसे खोजा?

सानचुंगने राजासे निवेदन किया कि यदि दण्ड न दिया जाय तो मैं सत्य बात बता सकता हूँ। राजाने आश्वासन दिया। सानचुंगने सारी बातें सत्य-सत्य बता दीं और अन्तमें कहा—मैं पितासे बहुत प्रेम करता हूँ तथा पिताको देवतास्वरूप ही मानता हूँ, इसलिये उनसे अलग नहीं रह सकता हूँ। यह कहते-कहते वह रो पड़ा। राजा यह सब सुनकर बहुत ही प्रभावित हुआ और बोला—मुझे आज पता चला कि बूढ़े व्यक्ति वास्तवमें बहुत बुद्धिमान् एवं अनुभवशील होते हैं।

राजाने सानचुंगके पिता वानचुंगको सम्मानपूर्वक राजधानीमें बुलवाकर उन्हें अपने दरबारमें प्रधानमन्त्रीके पदपर रखा और आदेश दिया कि आजसे बूढ़े व्यक्ति अपने परिवारके साथ रह सकते हैं। [डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी शर्मा]

माननीय प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदीजीका सम्बोधन

[गीताप्रेस-शताब्दीवर्ष-समारोहका समापन-भाषण]

॥ श्रीहरिः ॥

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्॥

सावनका पवित्र मास, इन्द्रदेवका आशीर्वाद, शिवावतार गुरु गोरखनाथकी तपःस्थली और अनेकानेक सन्तों-महात्माओंकी कर्मस्थली यह गीताप्रेस गोरखपुर। जब सन्तोंका आशीर्वाद फलीभूत होता है, तब इस प्रकारके सुखद अवसरका लाभ मिलता है। मुझे भी चित्रमय शिवपुराण और नेपाली भाषामें शिवपुराणके विमोचनका सौभाग्य मिला। गीताप्रेस विश्वका ऐसा इकलौता प्रिंटिंग प्रेस है, जो सिर्फ एक संस्था नहीं है, बल्कि एक जीवन्त आस्था है। गीताप्रेसका कार्यालय करोड़ों-करोड़ लोगोंके लिये किसीसे—किसी भी मन्दिरसे जरा भी कम नहीं है। इसके नाममें भी गीता है और इसके काममें भी गीता है। जहाँ गीता है, वहाँ साक्षात् कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ करुणा भी है, कर्म भी है, वहाँ ज्ञानका बोध भी है और विज्ञानका शोध भी है; क्योंकि गीताका वाक्य है—'**वासुदेवः सर्वम्। वासुदेवः सर्वम्**'—सब कुछ वासुदेवमय है, सब कुछ वासुदेवसे ही है, सब कुछ वासुदेवमें ही है।

१९२३ में गीताप्रेसके रूपमें जो यहाँ आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित हुई, आज उसका प्रकाश पूरी मानवताका मार्गदर्शन कर रहा है। हमारा सौभाग्य है कि हम सभी इस मानवीय मिशनकी शताब्दीके साक्षी बन रहे हैं। इस ऐतिहासिक अवसरपर ही हमारी सरकारने गीताप्रेसको गाँधी शान्ति पुरस्कार भी दिया है। गाँधीजीका गीताप्रेससे भावनात्मक जुड़ाव था। एक समयमें गाँधीजी 'कल्याण' पत्रिकाके माध्यमसे गीताप्रेसके लिये लिखा करते थे। मुझे बताया गया कि गाँधीजीने ही सुझाव दिया कि 'कल्याण' पत्रिकामें विज्ञापन न छापे जायँ। कल्याण पत्रिका आज भी गाँधीजीकी उस भावनाका शत-प्रतिशत अनुसरण कर रही है। मुझे खुशी है कि आज यह पुरस्कार गीताप्रेसको मिला है। यह देशकी ओरसे गीताप्रेसका सम्मान है, इसके योगदानका सम्मान है और इसकी १०० वर्षोंकी विरासतका सम्मान है। इन सौ वर्षोंमें गीताप्रेसद्वारा करोड़ों-करोड़ों किताबें प्रकाशित हुईं। यह संख्या किसीको भी हैरान कर सकती है। और ये पुस्तकें लागतसे कम मूल्यपर बिकती हैं, घर-घर पहुँचायी जाती हैं। आप कल्पना कर सकते हैं—इस विद्या-प्रवाहने कितने ही लोगोंको आध्यात्मिक-बौद्धिक तृप्ति दी होगी। समाजके लिये कितने ही समर्पित नागरिकोंका निर्माण किया होगा। मैं उन विभूतियोंका अभिनन्दन करता हूँ, जो इस यज्ञमें निष्काम भावसे बिना किसी प्रचारके अपना सहयोग देते रहे हैं। मैं इस अवसरपर सेठजी श्रीजयदयाल गोयन्दकाजी और भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी-जैसी विभूतियोंके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। गीताप्रेस-जैसी संस्था सिर्फ धर्म और कर्मसे नहीं जुड़ी है, बल्कि इसका एक राष्ट्रीय चरित्र भी है।

गीताप्रेस भारतको जोड़ती है। भारतकी एकजुटताको सशक्त करती है। देशभरमें इसकी बीस शाखाएँ देशके हर कोनेमें हैं, रेलवे स्टेशनोंपर हमें गीताप्रेसका स्टॉल देखनेको मिलता है। पन्द्रह अलग-अलग भाषाओंमें यहाँसे करीब १६०० प्रकाशन हुए हैं। गीताप्रेस अलग-अलग भाषाओंमें भारतके मूल चिन्तनको जन-जनतक पहुँचाती है। गीताप्रेस एक तरहसे 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की भावनाको प्रतिनिधित्व देती है।

गीताप्रेसने अपनी यह १०० वर्षकी यात्रा एक ऐसे समयमें पूरी की है, जब देश अपनी आजादीके ७५ वर्ष मना रहा है। इस तरहके योग केवल संयोग नहीं होते। १९४७ ईस्वीके पहले भारतने निरन्तर अपने पुनर्जागरणके लिये अलग-अलग क्षेत्रोंमें प्रयास किये थे। अलग-अलग संस्थाओंने भारतकी आत्माको जगानेके लिये आकार लिया। इसीका परिणाम था कि १९४७ आते-आते भारत मन और मानससे गुलामीकी बेड़ियोंको तोड़नेके लिये पूरी तरह तैयार हो गया। गीताप्रेसकी

स्थापना इसके लिये एक बहुत बड़ा आधार है। सौ साल पहलेका ऐसा समय जब सदियोंकी गुलामीने भारतकी चेतनाको धूमिल कर दिया। आप भी जानते हैं कि इससे भी सैकड़ों साल पहले विदेशी आक्रान्ताओंने हमारे पुस्तकालयको जलाया था। अंग्रेजोंके दौरमें गुरुकुल और गुरु-परम्परा लगभग नष्ट कर दिये गये। ऐसेमें स्वाभाविक था कि ज्ञान और विरासत लुप्त होनेके कगारपर थे। हमारे पूज्य ग्रन्थ गायब होने लगे थे, जो प्रिंटिंग प्रेस भारतमें थे, वे महँगी कीमतके कारण सामान्य मानवकी पहुँचसे दूर थे। आप कल्पना करिये गीता और रामायणके बिना हमारा समाज कैसे चल रहा होगा? जब मूल्यों और आदर्शोंके स्रोत ही सूखने लगे तो समाजका प्रवाह अपने-आप थमने लगता है, लेकिन हमें एक बात और याद रखनी है कि हमारे भारतकी अनादि यात्रामें ऐसे कितने ही पड़ाव आये, जब हम और, और ज्यादा परिष्कृत होकर निकले हैं। कितनी ही बार अधर्म और आतंक बलवान् हुआ है, कितनी बार सत्यपर संकटके बादल मँडराये हैं, लेकिन तब हमें श्रीमद्भगवद्गीतासे सबसे बड़ा विश्वास मिलता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् जब-जब धर्मकी सत्तापर, सत्यकी सत्तापर संकट आता है, तब-तब ईश्वर उसकी रक्षाके लिये प्रकट होते हैं।

और गीताका दसवाँ अध्याय बताता है कि ईश्वर कितनी ही विभूतियोंके रूपमें सामने आ सकता है। कभी कोई सन्त आकर समाजको नयी दिशा दिखाते हैं तो कभी गीताप्रेस-जैसी संस्थाएँ मानवीय मूल्यों और आदर्शोंको पुनर्जीवित करनेके लिये जन्म लेती हैं। इसलिये ही १९२३ में जब गीताप्रेसने काम करना शुरू किया, तो भारतके लिये भी उसकी चेतना और चिन्तनका प्रवाह तेज हो गया। गीता समेत हमारे धर्मग्रन्थ फिरसे घर-घर गूँजने लगे। मानस फिरसे भारतके मानससे हिल-मिल गया। इन ग्रन्थोंसे हमारी पुरानी परम्पराएँ और नयी पीढ़ियाँ जुड़ने लगीं। हमारे पवित्र ग्रन्थ आनेवाली पीढ़ियोंकी थाती बन गये। गीताप्रेस इस बातका भी प्रमाण है कि जब आपके उद्देश्य पवित्र होंगे, आपके मूल्य पवित्र होंगे, तो सफलता आपका पर्याय बन जाती है। गीताप्रेस एक ऐसा संस्थान है, जिसने हमेशा सामाजिक मूल्योंको समृद्ध किया है। लोगोंको कर्तव्यपथका रास्ता दिखाया है।

गंगाजीकी स्वच्छताकी बात हो, योग-विज्ञानकी बात हो, पतंजलि-योगसूत्रका प्रकाशन हो, आयुर्वेदसे जुड़ा आरोग्य-अंक हो, भारतीय जीवन-शैलीसे लोगोंको परिचित करवानेके लिये जीवनचर्या-अंक हो, समाजमें सेवाके आदर्शोंको मजबूत करनेके लिये सेवा-अंक और दान-महिमा अंक हो—इन सब प्रयासोंके पीछे राष्ट्र-सेवाकी प्रेरणा जुड़ी रही है। राष्ट्र-निर्माणका संकल्प रहा है।

सन्तोंकी तपस्या कभी निष्फल नहीं होती, उनके संकल्प कभी शून्य नहीं होते। इन्हीं संकल्पोंका परिणाम है कि आज हमारा भारत सफलताके नित्य नये आयाम स्थापित कर रहा है।■

[गोरखपुरके गीताप्रेस-परिसरमें किसी प्रधानमन्त्रीका यह प्रथम आगमन था। ७ जुलाई २०२३ ई० के दिन गीताप्रेस-शताब्दी-समारोहका समापन-दिवस अभूतपूर्व उल्लासके वातावरणमें सम्पन्न हुआ। मंचपर उत्तर प्रदेशकी राज्यपाल श्रीमती आनन्दीबेन पटेलजी और मुख्यमन्त्री योगी श्रीआदित्यनाथजीकी उपस्थितिसे वातावरणकी गरिमा और उल्लासमें विशेष वृद्धि हुई।

इस अवसरपर नगरके अनेकानेक गण्यमान्य अतिथि, विभिन्न उच्चाधिकारी, गीताप्रेसके ट्रस्टीगण, पदाधिकारी एवं कर्मचारी, विद्वान् एवं सनातनधर्मप्रेमी अतिथिगण उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए। भगवत्कृपासे यह गरिमामय ऐतिहासिक कार्यक्रम अत्यन्त आनन्दपूर्ण वातावरणमें सम्पन्न हुआ।—***सम्पादक***]

गीताप्रेससे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[30 सितम्बर शनिवारसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹80 (गुजराती, तेलुगु एवं नेपाली भाषामें भी उपलब्ध)।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹200, नेपालीमें भी।

जीवच्छ्राद्धपद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹100

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹50

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्वसामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹50

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹25

सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेव-विधि (कोड 210) पुस्तकाकार—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹10 [तेलुगुमें भी उपलब्ध]।

पंचांग-पूजन-पद्धति [कुशकण्डिका-होमविधिसहित] (कोड 2228)—प्रस्तुत पुस्तकमें पंचांग-पूजन कर्मके अन्तर्गत मुख्यरूपसे कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, रक्षाविधान, नवग्रहपूजन तथा नान्दीमुख श्राद्ध—इन पाँच प्रधान कर्मोंका विवेचन किया गया है। इसमें मन्त्रभाग संस्कृतमें हैं और निर्देश हिन्दीमें हैं। इसमें वैदिक मन्त्रोंके साथ-साथ पौराणिक मन्त्र भी दिये गये हैं। इस पुस्तकमें परिशिष्टके अन्तर्गत सुविधाकी दृष्टिसे कुशकण्डिकासहित होमविधि इत्यादि विषयोंका भी समावेश किया गया है। मूल्य ₹20

नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस'के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2295	**चित्रमय श्रीरामचरितमानस सटीक, ग्रन्था.**	1600
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	850
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	750
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	500
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, असमिया, नेपालीमें भी]	400
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	300
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	200

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1436	**श्रीरामचरितमानस**—मूलपाठ, बृहदाकार	400
82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	200
1617	,, मझला, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	200
83	,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	200
84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	100
85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	70
1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	80

प्र॰ ति॰ 20-07-2023
रजि॰ समाचारपत्र—रजि॰नं॰ 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

कल्याणके सभी अंक निश्चित प्राप्त करनेके लिये

वार्षिक शुल्क ₹ 300+₹ 200 अतिरिक्त [मासिक अंक रजिस्ट्रीसे भेजनेके लिये]

इस सुविधाका लाभ उठावें एवं कल्याणके सभी अंक निश्चित प्राप्त करें।

चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती, सटीक (कोड 2304) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—

(शारदीय नवरात्र 15 अक्टूबर रविवारसे प्रारम्भ होगा)

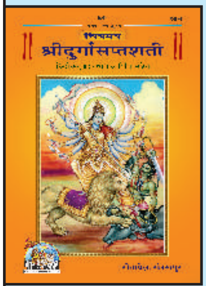

श्रीदुर्गासप्तशतीमें भगवतीकी कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ अनेक गूढ़ रहस्य भरे हैं। सकाम भक्त इस ग्रन्थका श्रद्धापूर्वक पाठ करके कामनासिद्धि तथा निष्काम भक्त मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस पुस्तकमें पाठ करनेकी प्रामाणिक विधि, कवच, अर्गला, कीलक, वैदिक-तान्त्रिक रात्रिसूक्त, देव्यथर्वशीर्ष, नवार्णविधि, मूल पाठ, दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, श्रीदुर्गामानसपूजा, तीनों रहस्य, क्षमा-प्रार्थना, सिद्धकुञ्जिकास्तोत्र, पाठके विभिन्न प्रयोग तथा आरती दी गयी है। माँ दुर्गाजीकी 100 से अधिक मनोहारी रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹450, डाकखर्च ₹90

श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

कोड 1346 सानुवाद, मोटा टाइप

कोड 1281, सानुवाद, विशिष्ट संस्करण

कोड 1161, केवल हिन्दी

कोड 1567, मूल, मोटा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**मूल,** मोटा टाइप, बेड़िआ (मलयालममें भी)	60
876	**मूल,** गुटका	25
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	60
1281	**सानुवाद** (वि॰ सं॰)	80
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ, तेलुगु, नेपालीमें भी)	50
489	**सानुवाद,** सजिल्द (गुजरातीमें भी)	60
866	**केवल हिन्दी**	30
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	80

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)